सनेही-मण्डल के कवि

डॉ० श्यामसुन्दर सिंह
एम० ए०, डी० फिल्०
प्राध्यापक–हिन्दी-विभाग
डी० एन० कालेज
फतेहगढ़ (उ० प्र०)

ब्रदर्स

मूल्य : अस्सी रुपये मात्र

पुस्तक : सनेही-मण्डल के कवि

लेखक : डॉ० श्यामसुन्दर सिंह

मुद्रक व प्रकाशक : आराधना ब्रदर्स १२४/१५२ सी ब्लाक
गोविन्दनगर कानपुर-२०८००६

संस्करण : १९९०

मूल्य : ८०.००

SANEHI MANDAL KE KAVI

By : **Dr. SHYAMSUNDER SINGH**

Published By-Aradhana Brothers, Kanpur-6

Price—**eighty Rupees Only**

पूजनीया
माता जी को
सादर
समर्पित

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक सन् १६८३ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी कविता के विकास मे काव्य मण्डलों का योगदान (भारतेन्दु, द्विवेदी और सनेही मण्डलो के विशेष सन्दर्भ में)" का तृतीय-खण्ड है। इसमें सनेही-मण्डल के कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' भी अपने समसामयिक रचनाकारों के लिए प्रेरक व्यक्तित्व थे। भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के समान यद्यपि आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में सनेही-युग को मान्यता नहीं मिल सकी तथापि गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' अपने युग के एक ऐसे कवि हैं, जो अनेक कवियों के लिए प्रेरक रहे हैं। सनेही जी ने जिस प्रकार अपने युग की साहित्यिक गतिविधि का नियमन किया, उसमें उनके सहयोगी रचनाकारों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रचना कर्म में समान रचनादर्श एवं सामूहिक दायित्व के निर्वाह की भावना को विकसित करने के लिए सनेही जी ने जिन रचनाकारों को प्रेरित एवं संगठित किया, उनके समूह के लिए प्रायः हिन्दी साहित्य के अनेक विद्वानों ने 'सनेही-मण्डल' शब्द का प्रयोग किया है। अतः सनेही जी और उनके सहयोगी रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करने वाली इस कृति का नाम 'सनेही-मण्डल के कवि' रखा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ छः अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत काव्य-मण्डल की परिकल्पना और हिन्दी काव्य के इतिहास में मण्डलीय चेतना के विकास का विवेचन किया गया है। मण्डलीय अवधारणा में यह व्याख्यायित किया गया है कि मण्डल विशेष के कवि आचार्य कवि के नेतृत्व एव नियमन में ही अपनी काव्य दृष्टि का निर्माण करते हुए सामूहिक उद्देश्य को लेकर अपना काव्य सृजन करते है जिससे मण्डल विशेष के कवियों के द्वारा काव्य-मण्डल निर्मित होते हैं।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के काव्य की भूमिका, पूर्व काव्य परम्पराएं और सनेही-मण्डल, सनेही-मण्डल का युग-प्रवाह, सनेही-मण्डल की परिकल्पना, सनेही-मण्डल की निर्माण प्रक्रिया, सनेही-मण्डल की समठन प्रक्रिया सनेही की काल-सीमा सनेही-मण्डल के कवि और

सनेही-मण्डल के कवियों का काव्य-चिन्तन पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में सनेही-मण्डल के कवि और उनकी काव्य रचनाएँ तथा सनेही-मण्डल के कवियों की पत्रकारिता का विवेचन हुआ है।

चतुर्थ अध्याय में सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य वस्तु-पक्ष के अन्तर्गत उनके द्वारा गृहीत परम्परित और नवीन दोनों प्रकार के काव्य विषयों को व्याख्यायित किया गया है।

पंचम अध्याय में सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य के शिल्प-पक्ष के अन्तर्गत भाषा, शैली, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, छन्द और काव्य-गुण का विवेचन किया है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों के अवदान का विवेचन करते हुए ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की गयी है।

शोध-प्रबन्ध का प्रस्तुत भाग गुरुवर डॉक्टर राजेन्द्रकुमार वर्मा प्रोफेसर हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के कुशल निर्देशन मे पूर्ण हुआ है। अतः मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ। हिन्दी-विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० मोहन अवस्थी, डॉ० योगेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ० किशोरीलाल गुप्त और डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र ने भी समय-समय पर मुझे सत्परामर्श देकर मेरा मार्ग-दर्शन किया है। अतः इन सभी गुरुजनों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन में मुझे डॉ० श्यामनारायण तिवारी, प्राध्यापक, काशी विद्यापीठ वाराणसी, डॉ० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सहायता मिली। स्व० आचार्य सिद्धनाथ मिश्र, कानपुर; कृष्णबिहारी शुक्ल 'प्रभात'; कु० मनोरमा शुक्ल 'मधुर मनीषा'; हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'; स्व० श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'; डॉ० अभ्युदानन्द मिश्र और डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', लखनऊ आदि ने मेरी अनेक प्रकार से सहायता की। अतः इन सब महानुभावों के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं अपने मित्र डॉ० हेमन्तकुमार श्रीवास्तव और नन्दलाल 'हितैषी' का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस शोध-कार्य में अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है। अपने पूज्य भ्राता श्री बलराम सिंह जी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपना स्नेह और आर्थिक सहायता प्रदान कर इस शोध-कार्य के सम्पन्न होने तक अपना अमूल्य आशीष प्रदान किया।

सामग्री संकलन के क्रम में मैंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय भारती भवन पुस्तकालय

इलाहाबाद; काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, वाराणसी; हिन्दू विश्वविद्यालय सेन्ट्रल लाइब्रेरी, वाराणसी और मारवाड़ी पुस्तकालय, बिरहाना रोड, कानपुर आदि का सम्यक् उपयोग किया है। अतः इन पुस्तकालयों के प्रबन्धकों और कर्मचारियों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है।

दुर्गानारायण महाविद्यालय फतेहगढ़ (उ० प्र०) के भूतपूर्व प्राचार्य डॉ० हुकुम सिंह; प्राचार्य डॉ० भोलासिंह; भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० जगदीशनारायण त्रिपाठी और हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० राजकुमार सिंह ने भी ग्रन्थ के प्रकाशन में मेरा सहयोग किया। अतः इन महानुभावों का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

अन्त में इस पुस्तक के प्रकाशक श्री कृष्णचन्द्र शुक्ल का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को अत्यल्प समय में प्रकाशित किया।

फतेहगढ़ —श्यामसुन्दर सिंह

दिनांक—२६ जनवरी, १६६०

विषयानुक्रम

१

काव्य-मण्डल की परिकल्पना और उसका विकास

काव्य-मण्डल की परिकल्पना—'मण्डल' के कोशात्मक अर्थों मे चक्र के आकार का घेरा, किसी एक बिन्दु से समान अन्तर पर चारों ओर घूमी हुई परिधि, चक्कर, गोलाई, वृत्त, चन्द्र या सूर्य के चारों ओर पड़ने वाला घेरा जो यदा-कदा नभ में बादलों की बहुत हल्की तह या कुहरा रहने पर दृष्टि-गत होता है, चारों दिशाओं का वह घेरा जो गोल दिखाई पड़ता है अर्थात् क्षितिज, बारह राज्यों का समूह, चालीस योजन लम्बा एवं बीस योजन चौडा भूमि-खण्ड, समाज, समूह, समुदाय-यथा मित्र मण्डल, एक प्रकार का व्यूह, सेना की वृत्ताकार स्थिति, ग्रह के घूमने की कक्षा, ऋग्वेद का एक खण्ड आदि का समावेश मिलता है।[1] परन्तु यहाँ 'मण्डल' शब्द के सभी अर्थों को न ग्रहण कर उसके विशिष्ट अर्थ यथा-समाज, समूह, समुदाय, वर्ग अथवा सर्किल के अर्थ ही अपेक्षित हैं, जिसका तात्पर्य है एक ही प्रकार का उद्देश्य या विचार रखने वाले अथवा एक ही तरह का कार्य सम्पन्न करने वाले लोगों का दल या समूह।[2] 'मण्डल' शब्द की व्युत्पत्ति भी कुछ सीमा तक इसी अर्थ को व्यंजित करती है। 'मडिमंड' का अर्थ है 'शोभा' जिसमे 'ल' प्रत्यय के लग जाने से 'मण्डल' शब्द का निर्माण होता है, 'मंडलातीति मण्डलं' शोभा प्रदान करने वाला, यथा सूर्य और चन्द्र के चारों ओर प्रकाश की परिधि जिस प्रकार शोभा प्राप्त करती है, उसी प्रकार व्यक्ति विशेष के केन्द्रस्थ व्यक्तित्व के कारण उसके चारों ओर घिरा हुआ उसका समुदाय उसके काय कलापो की कीर्ति से शोभित होता है ।[3]

हुए भी 'सर्किल' शब्द के अर्थ में संगठनात्मक शक्ति एवं उसके लक्ष्य को व्यंजित करने वाले भाव का जो बोध होता है, वह 'मण्डल' शब्द के अर्थ से नहीं ध्वनित होता है। मूलतः भारतीय साहित्य में 'मण्डल' शब्द समुदाय अथवा समूह का ही वाचक रहा है, उसके पीछे एक सूत्रता में आबद्ध होने के प्रयत्न का कोई भी भाव नहीं व्यंजित होता।

'मण्डल' शब्द के विवेचन-क्रम में यह धारणा अवश्य उभरती है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र के मण्डल में परिधि का महत्त्वपूर्ण स्थान होते हुए भी केन्द्रस्थ सूर्य और चन्द्र का प्रकाश प्रमुख स्थान प्राप्त करने के कारण परिधि को प्रकाशवान् बनाता है, उसी प्रकार व्यक्ति विशेष के केन्द्रस्थ होने के कारण उसका समुदाय भी उसके क्रिया कलापों एवं प्रतिभा से प्रेरित एवं प्रकाशित होता है। परन्तु 'सर्किल' शब्द के अर्थ में सूर्य चन्द्रवत् एव व्यक्ति विशेष के केन्द्रस्थ होने की कोई परिकल्पना न होकर मात्र समान अभिरुचि और उद्देश्यों के संगठनात्मक समूह की ही परिकल्पना है, जिसमें नेतृत्व एवं केन्द्रस्थ तत्त्व का कोई भी अर्थ नहीं है।

'सर्किल' शब्द का अंग्रेजी में इस प्रकार का अर्थ दिया गया है—"समान सूत्र से आबद्ध अथवा अभिरुचि के समान बिन्दु के चारों ओर समायोजित होने के सम्बन्ध में परिकल्पित कोई दल या समाज।"[5] इस प्रकार 'मण्डल' शब्द से कुछ भिन्न अर्थ व्यंजित करता हुआ 'सर्किल' शब्द भी समूह वाची अर्थ को ध्वनित करता है।

इन दोनों शब्दों के अतिरिक्त एक शब्द 'स्कूल' भी है, जो समुदाय या समूह का वाचक है, परन्तु इसका अर्थ 'सर्किल' की अपेक्षा 'मण्डल' के अधिक निकट है। अंग्रेजी में 'स्कूल' शब्द का अर्थ—"किसी सिद्धान्त पर समान स्तर पर आरूढ़ जन समाज, एक ही शिक्षा के अनुकरण कर्ता या एक ही बौद्धिक पद्धति के अनुयायी, एक ही आचार्य के शिष्य अथवा अनुयायी 'स्कूल' के अन्तर्गत परिगणित होते हैं।" दिया गया है।[6] वस्तुतः सिद्धान्त, नेतृत्व, विचारधारा, शिक्षा एवं बौद्धिक क्रिया व्यापार की एकता में आबद्ध एक 'स्कूल' के लोग एक आचार्य के द्वारा प्रत्यक्षतः अनुशासित होकर समान सिद्धान्तों के कारण एक समूह के रूप में अपनी चिन्तन पद्धति को निर्मित करते हैं। इस प्रकार 'स्कूल' शब्द के अर्थ में आचार्य का नेतृत्व एवं 'मण्डल' शब्द के अर्थ में व्यक्ति के केन्द्रस्थ होने के कारण एक ही विचारधारा को प्रकारान्तर से समर्थन प्राप्त होता है। इस आधार पर 'मण्डल' और 'स्कूल' के अर्थ का भाव 'सर्किल' की अपेक्षा परस्पर एक दूसरे के अधिक निकट है •

इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारतेन्दु, द्विवेदी और सनेही मण्डल अपनी गुणात्मक रचनाधर्मिता के कारण 'सर्किल' के साथ-साथ एक 'स्कूल' भी हैं। 'मण्डल', 'सर्किल' और 'स्कूल' के विवेचन से काव्य मण्डलीय अवधारणा को समझने में सहायता प्राप्त होती है। मण्डल विशेष के अन्तर्गत काव्य क्षेत्र में आचार्य विशेष द्वारा निर्देशित शिष्यों, सहयोगियों, मित्रों और दरबारियों से लेकर उसके अनुयाइयों के संगठन का अभिप्राय प्रकट होता है। मण्डल में काव्य कला को सामूहिक रूप में विकसित करने की प्रक्रिया समाहित रहती है। मण्डल के आचार्य के द्वारा अनुशासित एवं निर्देशित कवियों में एक सामूहिक उद्देश्य, संगठनात्मक काव्य सृजन की प्रक्रिया, रचनात्मक ऐक्य भाव एवं अनुशासित मनोभाव से प्रेरित काव्य सृजन ही वह आधार भूमि है, जिस पर काव्य-मण्डल का निर्माण होता है। काव्य क्षेत्र में मण्डल के कवियों का सामूहिक मनोभाव एव आचार्य का समुचित निर्देशन ही मण्डलीय काव्य की रचना कराता है। मण्डलीय काव्य के लिए यह आवश्यक है कि मण्डल विशेष के कवि आचार्य कवि के संयोजकत्व, संपादकत्व एवं नेतृत्व में ही अपने सिद्धान्तों तथा काव्य की रचना पद्धतियों का निर्माण करें, जिसमें उनमें पार्थक्य का भाव न हो। यदि उनमें पार्थक्य का भाव उद्भूत होता है, तो मण्डलीय काव्य सृजन की चेतना खण्डित हो जाती है।

मण्डलीय काव्य सृजन की प्रक्रिया—प्रायः यह देखा जाता है कि जब कभी कोई काव्य प्रवृत्ति साधना एवं प्रयोग शीलता की लम्बी यात्रा तय करके रूढ़ हो जाती है तथा उसकी कला चेतना में जड़ता उभर आती है, तब नवीनता की खोज में नव्य काव्य प्रवृत्तियों का विकास होता है। यही नवीन काव्य क्रमशः क्लासिक होकर नूतन काव्य प्रवृत्ति के सृजन के लिए अन्य रचनाकारों को भी आकृष्ट करता है, जिसके पीछे किसी न किसी आचार्य कवि की काव्य शिक्षा की प्रेरणा रहती है। यह प्रेरणा एक संस्कार अथवा एक बन्धन के रूप में परिवर्तित हो जाती है। आचार्य कवि की काव्य-शिक्षा अथवा काव्यादर्श के अनुकरण की प्रवृत्ति के प्रभाव स्वरूप कवियों का एक वर्ग निर्मित होने लगता है, जिनके काव्यादर्श प्रायः एक समान ही रहते हैं। आचार्य कवि के काव्यादर्शों के अनुसरण से मण्डलीय काव्य का सृजन प्रारम्भ होता है। इस प्रकार विभिन्न युगों में विभिन्न साहित्यिक वादों एवं सिद्धान्तों पर आधारित आचार्य कवि अपने काव्यादर्शों का निर्माण कर अपने मण्डल के कवियों को समूह काव्य सृजन के लिए प्रस्तुत करता है, जिससे मण्डलीय काव्य धारा तब तक प्रवाहित होती रहती है,

जब तक अन्य कोई आचार्य कवि अपने काव्यादर्शों के निर्माण से किसी भिन्न काव्य प्रवृत्ति का प्रवर्तन न करे।

इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि मण्डल के कवियों में यदि कोई कवि विशेष सजग एवं प्रतिभाशाली है, तो वह अपनी मौलिक दृष्टि द्वारा मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति की परिधि के बाहर जाकर नूतन काव्य प्रवृत्ति को प्रतिष्ठापित कर सकता है। मूलतः काव्य शिक्षा पर जोर देने एवं पूर्ववर्ती काव्यादर्शों के अनुकरण से ही कवियों की वैयक्तिकता आहत होती है। फलतः कवि मौलिक स्थापना में असक्षम हो जाता है, जिससे मण्डलीय काव्य की परिकल्पना निर्मित होने लगती है। इस सम्बन्ध में डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है–"गतिशील पक्ष के प्रबल होने पर व्यक्तिगत रचनात्मक प्रतिभा में निखार आता है और स्थितिशील तत्त्व के अनुकरण या संवार में निर्वैयक्तिक कारीगरी में नैपुण्य प्राप्त होता है।"[7]

मण्डलीय काव्य निर्माण के अन्य कारणों में एक कवियों का राजदरबारी रूप भी है। इस प्रकार के कवियों का रूप संस्कृत और हिन्दी दोनों मे परिलक्षित होता है। कवियों को राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण उन्हे दरबार के वातावरण एवं राजाओं के प्रति सम्मान भाव को अक्षुण्ण रखने के लिए राजाओं की स्तुतियाँ करनी पड़ती थीं, जिसका सीधा सम्बन्ध उनकी जीविका सा था। दरबारी वातावरण के अनुरूप एवं राज सम्मान के प्रति काव्य सृजन में कवियों को दरबार के समस्त कवियों से होड़ लेनी पड़ती थी। फलस्वरूप उनका ध्यान गम्भीर एवं वृहत् काव्य सृजन की ओर न जाकर चमत्कार एवं उक्ति–वैचित्र्य प्रधान काव्य पर केन्द्रित रहता था, जिससे दरबार में राजा और दरबारियों का मनोविनोद हो सके। इसी प्रतिस्पर्द्धा में चमत्कार प्रधान काव्य सृजन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती थी, जिससे काव्य सृजन में मौलिकता एवं विभिन्नता के स्थान पर एकरूपता का आ जाना स्वाभाविक था। चमत्कारिक काव्य रचना से कवियों का दरबार में विशेष सम्मान होता था। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है–"जो पंडित सभा में विजयी होता था, उसके रथ को राजा स्वयं खींचते थे, तो उसे 'ब्रह्म रथ यान' कहते थे और जब राजा स्वयं सुवर्णपट्ट पंडित के मस्तक पर बांधते थे, तो उसे 'पट्टबन्ध' कहा जाता था।"[8] राजसभा में सम्मान पाने की लालसा के कारण कवियों को काव्य के कला पक्ष पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना पड़ता था। परिणामतः चमत्कारिक उक्तियों से परिपूर्ण काव्य रचनाओं का सृजन करना पड़ता था, जिससे एक समूह काव्य रचना की प्रवृत्ति इन कवियों में दृष्टिगत होती है। इस समूह काव्य

का प्रमुख वैशिष्ट्य अलंकृति, वक्रोक्ति भंगिमा एवं व्यंजना के लक्ष्य पर केन्द्रित रहा है, जिससे रचना दरबार में कवि के पाण्डित्य को प्रमाणित करने में सहायक होती थी।

समूह काव्य सृजन के अन्य कारणों में 'कवि समयों' का भी विशिष्ट महत्त्व रहा है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम राजशेखर ने किया था। उन्होंने 'कवि-समय' की परिभाषा इस प्रकार दी है–"अशास्त्रीयम् लौकिक च परम्परायातं यमर्थमुपनिवध्नन्ति कवयः स कवि समयः"[9] अर्थात् अशास्त्रीय अलौकिक तथा केवल परम्परा में प्रचालित जिस अर्थ का कवि लोग वर्णन करते हैं, वह 'कवि-समय' है। इन कवि समयों का मूल क्या है और ये किस समय यथार्थ रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं ? इसकी कोई निश्चित सीमा रेखा नहीं बतायी जा सकती, परन्तु कवि समाज में इनका रूढार्थ में प्रयोग होता रहा है। इनके कुछ रूप पूर्ववर्ती विद्वानों के अनुभवो पर आधारित होते हैं और कुछ का प्रचलन प्रतिस्पर्द्धा वश भी होता रहा है। इन कवि समयों के सम्बन्ध में राजशेखर ने यह मत व्यक्त किया कि प्राचीन युग के पंडित सहस्रों वेदों का आलोडन-विलोडन करके एवं देश देशान्तरों में पर्यटन करके इनका रूप निश्चित कर देते हैं, जो देश काल की परिवर्तित परिस्थिति मे भी ये ग्राह्य बने रहते हैं।[10] इन कवि समयो के रूप जब काव्य सम्प्रदाय में निश्चित हो जाते हैं तब वे विभिन्न युगो के साहित्य में अबाध रूप से प्रयुक्त होने लगते हैं, जिससे समूह काव्य प्रवृत्ति के निर्माण को प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है। इन कवि समयों के कुछ उदाहरण इस प्रकार है, जिनके प्रयोग काव्य में प्रायः होते रहे हैं–अशोक, कामदेव, कुमुद, कोकिल, चक्रवाक, चन्दन, तिलक, नीलोत्पल, पद्म, मालती, राजहंस, बकुल एवं सहकार आदि। इनके प्रयोगों से भी समूह काव्य सृजन को सम्बल प्राप्त होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य-शिक्षा की परम्परा वह मूलभूत कारण है जिससे मण्डलीय काव्य निर्माण की प्रवृत्ति का विकास होता है। काव्य-शिक्षा के अतिरिक्त कवियों का राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण दरबारी परिवेश के अनुसार काव्य सृजन की प्रक्रिया में चमत्कार प्रवृत्ति की प्रबलता से कवियों की वैयक्तिकता के लोप होने के कारण से भी मण्डलीय अथवा समूह काव्य सृजन की धारणा विकसित होती है। मण्डलीय काव्य सृजन के लिए कवि की निर्वैयक्तिकता एवं अनुकरण की प्रवृत्ति ही वह आधारभूमि जिस पर समूह काव्य सृजन की परम्परा का विकास होता है। इन दोनों कारणो के अतिरिक्त कवि समय' अथवा कवि भी आंशिक

रूप में मण्डलीय काव्य चेतना के पल्लवन में सहयोग प्रदान करती हैं, परन्तु मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति के पल्लवन की प्रक्रिया में 'कवि-समय' का महत्व काव्य-शिक्षा और कवियों का राज्याश्रम प्राप्त होना, इन दोनों कारणों की अपेक्षा अल्प है। वस्तुतः यही तीन कारण हैं जिनसे समान विचारधारा पर आधृत कवियों का एक समूह काव्य सृजन में तत्पर होकर अपने मण्डलीय काव्य का निर्माण करता है और काव्य के सम्बन्ध में उनकी स्थापनाएँ प्रायः समान रहती है। यदि मण्डल के कवियों के काव्यादर्श मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति से भिन्न हुए तो वे मण्डल की परिधि में सम्मिलित नहीं हो सकते।

काव्य प्रवृत्ति की एकरूपता और मण्डलीय धारणा में अन्तर—सामान्यत काव्य प्रवृत्ति की एकरूपता अथवा समूह काव्य प्रवृत्ति और मण्डलीय काव्य की अवधारणा के जो अर्थ हैं, वे समान से लक्षित होते हैं। परन्तु सूक्ष्मता से विचार करने पर दोनों में स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। वस्तुतः मण्डलीय काव्य में भी समूह काव्य रचना की प्रवृत्ति रहती है और काव्य प्रवृत्ति की एकरूपता में भी। परन्तु मण्डलीय काव्य की अवधारणा में यह अनिवार्य कि उसमें किसी आचार्य अथवा प्रवृत्ति के प्रवर्तक का अनुशासन हो और उसके द्वारा प्रतिपादित आदर्शों का उसके काव्य समूह में आने वाले समस्त सदस्यों द्वारा पोषण किया जाय। जिस प्रकार सूर्य अथवा चन्द्र मण्डलो मे सूर्य और चन्द्र का प्रकाश उनकी परिधि को आलोकित अथवा प्रभावित करता है, उसी प्रकार मण्डलीय काव्य में आचार्य कवि अथवा प्रवर्तक का पूर्ण नियमन और नेतृत्व होना चाहिए। मण्डल के आचार्य द्वारा प्रतिपादित आदर्श ही उसके मण्डल के कवियों के लिए समूह काव्य सृजन हेतु सिद्धान्त बन कर उनका मार्ग दर्शन करते हैं।

काव्य प्रवृत्ति की एकरूपता में भी मण्डलीय काव्य के समान समूह काव्य सृजन की परम्परा अवश्य चलती है, परन्तु उसमें किसी आचार्य कवि, शिक्षक अथवा प्रवर्तक का कोई ऐसा नियमन और निर्देशन नहीं रहता जिसके आधार पर अन्य लोग भी उसी काव्य प्रवृत्ति का अनुगमन करें। काव्य प्रवृत्ति की एकरूपता के काव्य सृजन में अन्य कोई कारण भले ही हो, परन्तु किसी आचार्य या शिक्षक का अनुशासन नहीं रहता। संभव है युग और परिस्थिति विशेष अथवा अन्य किसी कारण वश समूह काव्य सृजन की परम्परा चल रही हो, परन्तु इस समूह काव्य सृजन का निर्देशन अथवा नियमन किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा न हो। यही दोनों में मूलभूत अन्तर है और इसी अन्तर को ध्यान में रखकर हिन्दी काव्य के इतिहास में समूह काव्य सृजन की प्रवृत्ति का मूल्यांकन करना अपेक्षित होगा, क्योंकि हिन्दी काव्य के विकास में कुछ स्थलों पर समूह काव्य सृजन की तो

अवश्य प्राप्त होती है, परन्तु वे मण्डलीय काव्य सृजन की प्रवृत्ति की अवधारणा से भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य के पूर्व समूह काव्य रचना की प्रवृत्ति—सामान्यतः आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रारम्भ भारतेन्दु-युग से स्वीकार किया जाता है। स्वयं भारतेन्दु ने अपने काव्य-मण्डल का निर्माण कर आधुनिक हिन्दी काव्य में समूह काव्य सृजन की परम्परा का नवोन्मेष प्रस्तुत किया। परन्तु सम्पूर्ण हिन्दी काव्य के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय, तो यह सहजतः अनुमानित होता है कि समूह काव्य सृजन की परम्परा मात्र भारतेन्दु के द्वारा ही नहीं प्रवर्तित हुई, प्रत्युत इसकी प्रारम्भिक कड़ी आदि-काल के काव्य धारा में प्राप्त होती है। काव्य-मण्डल के निर्माण हेतु जिन पक्षों का पहले विवेचन किया गया है, उनमें कवियों के राजदरबारी रूप को ग्रहण किया गया है। आदि-काल के प्रारम्भिक चरण में सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् यवनों का आक्रमण उत्तरी भारत में प्रबल रूप में प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप राजपूत राजा इस्लामी शक्ति के सम्मुख निरन्तर युद्ध रत होने पर युद्धाग्नि में जलकर नष्ट होने लगे। इस कारण इस्लामी सत्ता भारत में क्रमशः उदय होने लगी। फलतः इस काल के हिन्दी काव्य में आक्रमणों एवं युद्धों के प्रभावों की मनःस्थितियों के प्रतिफलन से युद्ध-परक एवं भारतीय राजाओं के उत्साहवर्द्धक वीर काव्यों का वर्णन दिखाई पड़ता है।

इन राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव यह पड़ा कि आदि-काल मे कवियों के दो वर्ग बने। एक वर्ग का कवि राजाओं के साहस एवं वीरत्व भाव को जागृत करने के लिए वीर गाथाओं के सृजन में तत्पर हुआ और दूसरे वर्ग का कवि इस राष्ट्रव्यापी विनाश लीला एवं नरसंहार को देखकर पारलौकिक तत्वों पर चिन्तन हेतु व्यग्र हुआ। फलतः हठयोग आदि से लेकर अन्य आध्यात्मिक विचारों के संवाहक सिद्धों, जैनों और नाथों के काव्य सामने आये, जिनके द्वारा हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम आध्यात्मिक साधना पद्धतियों, सामाजिक आडम्बरों के विरोध, उपदेशात्मक विचारों और हठयोग साधना पद्धतियों को अभिव्यक्ति मिली। सम्पूर्ण आदि काल में तीन प्रकार की मण्डलीय काव्य चेतना दृष्टिगत होती है। इन काव्य मण्डलों में साम्प्रदायिक सिद्धान्त ही वह केन्द्रस्थ तत्त्व हैं, जिनके प्रभाव से मण्डलीय काव्य सृजन की परम्परा का पल्लवन होता है और अनेक कवि उन सिद्धान्तों को काव्यादर्श मानकर उस परम्परा पर समूह काव्य का सृजन करते हैं। ये तीनों काव्य मण्डलों के पृष्ठाधार हैं सिद्ध-मत जैन-मत और नाथ-मत।

आदि-काल में एक और समूह काव्य प्राप्त होता है–रासो-काव्य। परन्तु यह मण्डलीय काव्य चेतना से पृथक एक प्रकार का ऐसा काव्य है, जिसमें किसी केन्द्रस्थ भाव का विशेष प्रभाव न होकर मात्र प्रवृत्ति की एकरूपता ही लक्षित होती है। रासो-काव्य परम्परा के प्रवर्तक अथवा शिक्षक किसी व्यक्ति विशेष का नाम अन्नुलिखित होने के कारण यह समूह काव्य मण्डलीय परिकल्पना से पृथक् दिखाई पड़ता है।

सिद्ध-काव्य–सिद्ध-काव्य प्रवृत्ति के प्रथम रचनाकार के रूप में सिद्ध सरहपा का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपनी रचनाओं का वर्ण्य-विषय गुरु सेवा का महत्व, पाखण्ड एवं आडम्बर का विरोध, सहज जीवन यापन और रहस्य भावना को बनाया। सिद्ध-काव्य की प्रमुख विशेषता बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व को प्रसारित करने के लिए प्रयुक्त जन भाषा का प्रयोग है। विद्वानों ने चौरासी सिद्धों के नाम गिनाये हैं। इनके काव्य के द्वारा बाह्याडम्बरों का जो विरोध हुआ, उससे भक्ति कालीन कवि कबीर आदि तक प्रभावित हुए। सिद्ध कवियों की सामाजिक चेतना को भी भक्ति कालीन कवियों ने ग्रहण कर अपनी सामाजिक विचारधारा को प्रौढ़ता प्रदान की। सिद्ध-काव्य समूह के कवियों में सरहपा के अतिरिक्त शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा और कुक्कुरिपा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

जैन-काव्य–सिद्ध-काव्य समूह के समान जैन-काव्य समूह में भी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का आदर्श वह केन्द्रस्थ भाव है, जिस पर उनके मण्डलीय काव्य सृजन की परम्परा विकसित होती है। जैन कवियों के काव्य के प्रमुख वर्ण्य-विषय तीर्थंकरों की जीवनियाँ, सांसारिक विवरण, श्रावकों के चित्रण और धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण आदि जैन कवियों को एक कवि-मण्डल के सदस्य के रूप में प्रस्तुत करते है। वस्तुतः जैन कवि किसी शिक्षित पाठशाला के कवि नहीं है, परन्तु धार्मिक सिद्धान्तों को केन्द्र बिन्दु मानकर उन्होंने काव्य-चेतना की परिधि को इस प्रकार निर्मित किया कि वह एक मण्डलीय काव्य के समान दृष्टिगत होता है। इनके काव्य में 'दोहा' छन्द का प्रयोग प्रमुखतः से हुआ है। धार्मिक सिद्धान्तों से प्रभावित होने के कारण जैन कवियों का प्रमुख रस शान्त रस ही रहा। जैन-काव्य समूह के रचनाकारों में श्रावकाचार, भरतेश्वर बाहुबली रास, चन्दनबाला रास, स्थूलिभद्र रास, रेवंतगिरि रास और नेमिनाथ रास के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी काव्य भाषा पर अपभ्रंश भाषा का विशेष प्रभाव है।

नाथ-काव्य–नाथ कवियों की मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति पर गोरखनाथ का विशेष प्रभाव रहा नाथ काव्य-मण्डल के केन्द्र बिन्दु माने जा

सकते हैं। गोरखनाथ के अतिरिक्त इस काव्य प्रवृत्ति के पोषक कवियों में चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, चुणकरनाथ, भरथरी एवं जलन्ध्री पाव आदि के नाम स्मर्तव्य हैं। नाथ-काव्य के आदि कवि गोरखनाथ प्रसिद्ध हठयोगी साधक थे। इसी कारण नाथ-काव्य समूह के प्रमुख वर्ण्य-विषय हठयोग साधना के अनुरूप इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, कुण्डलिनी-जागरण, शून्य-समाधि एवं गुरु-महिमा आदि रहे। नाथ-काव्य प्रवृत्ति का विकास परवर्ती भक्ति काल में ज्ञान मार्गी सन्तों के काव्य में हुआ, जिसे कबीर आदि कवियों ने उनके सिद्धान्तों को अपने काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया।

आदिकाल के पश्चात् भक्तिकाल के काव्य में भी विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर समूह काव्य के सृजन की परम्परा प्राप्त होती है। भक्ति काल में भक्ति तत्त्व को आत्मसात् कर अनेक आचार्यों ने अपने सिद्धान्तो के अनुरूप विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना कर मण्डलीय काव्य रचना के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया। भक्तिकाल में आचार्यों के साम्प्रदायिक सिद्धान्त ही मूलभूत प्रेरक तत्त्व थे, जिससे प्रेरित होकर मण्डलीय काव्य सृजन की परम्परा विकसित हुई। जो कवि जिस सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ, उस सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुरूप उसने अपनी काव्य चेतना का निर्माण किया, जिससे मण्डलीय काव्य सृजन की परम्परा सम्पूर्ण भक्तिकाल में दृष्टिगत होती है। भक्तिकाल की निर्गुण और सगुण नामधारी काव्य परम्पराओं के अन्तर्गत जो अवान्तर काव्य धाराएँ मिलती है, उनके काव्य का निर्माण मण्डलीय काव्य चेतना से पर्याप्त सीमा तक संगति रखता है।

सन्त-काव्य--सन्त-काव्य की मण्डलीय काव्य चेतना के केन्द्र बिन्दु स्वामी रामानन्द थे, जिनके शिष्य कबीर इस सन्त-काव्य परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि हुए। कबीर के अतिरिक्त अन्य सन्त कवियों में रैदास, नानकदेव, जम्भनाथ सीगा, लालदास, दादू दयाल, मलूकदास, बाबालाल, सुन्दरदास, धर्मदास, रज्जब, सदना, बेनी, पीपा, धन्ना और अंगद आदि ने सन्त-काव्य प्रवृत्ति को ल्लवित किया। सन्त-काव्य के मुख्य विषय वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध, क्रोध-लोभ-मोह और हिंसा का वर्जन, सदाचार युक्त जीवन यापन की प्रतिष्ठा, आत्मानुभव की प्रामाणिकता, सामान्य निरक्षर प्रजा में सत्य की प्रतिष्ठा और कथनी-करनी में एकरूपता आदि रहे। सन्त-काव्य का प्रमुख रस शान्त रहा, परन्तु दाम्पत्य प्रतीकों के माध्यम से शृंगार रस की धारा भी प्रभावित हुई है। भाषा की दृष्टि से सन्त कवियों ने जन-सामान्य की भाषा अपनायी जिसमें ब्रज अवधी भोजपुरी पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है जन सामान्य की भाषा को प्रमुखत से ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य

कवियों को अपनी वाणी को उपेक्षित और सामान्य जन के मध्य प्रसारित करना ही था। सन्त कवियों ने अलंकारों के अनेक प्रयोग किये, परन्तु उनका प्रमुख अलंकार रूपक रहा, जिसके माध्यम से उन्होंने सामान्य जीवन के क्रिया कलापों का सरस चित्र प्रस्तुत किया। प्रतीक योजना के अन्तर्गत इनके उलटवासियों का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है, जिसके माध्यम से आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं को प्रतिष्ठापित किया गया। सन्त-काव्य समूह में प्रमुख छन्द 'दोहा' और 'सबद' के लिए गेय पदों को ग्रहण किया गया। सन्त-काव्य का प्रवाह मात्र भक्तिकाल तक ही नही चला, अपितु रीतिकाल के अन्तर्गत आने वाले कवि यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवन दास, पलटू दास, चरनदास और शिव नारायण आदि के द्वारा भी इस काव्य प्रवृत्ति का पोषण हुआ है। विविध सन्त सम्प्रदायों का संगठन एवं विकास मण्डलीय बोध से अनुप्राणित है, जिसमें सम्प्रदाय विशेष के प्रवर्तक के व्यक्तित्व और मान्यताओं को प्रखरता मिली है।

सूफी-काव्य–सूफी-काव्य परम्परा को विद्वानों ने प्रेम मार्गी शाखा, प्रेमाख्यानक-काव्य आदि अन्य नामों से भी अभिहित किया है, परन्तु जहाँ सूफी-काव्य परम्परा का भाव साम्प्रदायिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण सीमित है, वहीं प्रेमाख्यानक-काव्य की सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होने से इसका क्षेत्र व्यापक हो गया है और यह मण्डलीय अवधारणा से पृथक एक विशाल वर्गीय काव्य प्रवृत्ति का द्योतक है। भारतीय वाङ्मय मे प्रेमाख्यानक-काव्य की एक दीर्घ परम्परा प्राप्त होती है और इस परम्परा के समूह काव्य पर कोई व्यक्ति विशेष का ऐसा प्रभाव नहीं दृष्टिगत होता, जिससे इसे मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति की संज्ञा दी जा सके। प्रेमाख्यानक-काव्य के स्थान पर यदि हम सूफी-काव्य के अर्थ गाम्भीर्य पर विचार करें तो इसमें हमें मण्डलीय अवधारणा किसी न किसी रूप में अवश्य प्राप्त हो जाती है।

सूफी-काव्य समूह में केन्द्रस्थ व्यक्तित्व ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का रहा, जिन्होंने बारहवीं शती में भारत में सूफी मत का प्रचार किया। इसके बाद भारत में अनेक सूफी सम्प्रदाय संगठित हुए और आगे चलकर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर हिन्दी कवियों ने सूफी-काव्य का सृजन कर एक मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति के निर्माण में योग दिया। यह उल्लेखनीय है कि मण्डलीय अवधारणा में किसी केन्द्रस्थ व्यक्तित्व का होना आवश्यक है- जिसके प्रभाववश उसमें दूसरे भी सम्मिलित हो सकें। इस दृष्टि से सूफी-काव्य में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती और सूफी मत का दार्शनिक सिद्धान्त ही

वह केन्द्रस्थ तत्व है, जिसकी परिधि में सूफी कवि बंधकर काव्य सृजन कर सके, परन्तु प्रेमाख्यानक-काव्य परम्परा में ऐसा कोई विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अथवा केन्द्रस्थ व्यक्तित्व नहीं दिखाई पड़ता, जिसके आधार पर उसे मण्डलीय काव्य की संज्ञा दी जा सके।

सूफी-काव्य में प्रेम तत्त्व को प्रमुख स्थान दिया गया है, जिसके माध्यम से स्वच्छन्द सौन्दर्य भावना, साहसिक क्रिया व्यापार एवं सामाजिक मर्यादा विमुख प्रेम भावना का मनोरम चित्रण हुआ है। सूफी-काव्य समूह की एक प्रमुख प्रवृत्ति कथात्मक तत्वों का प्रबन्धात्मक रूप में संयोजन है। सूफी-काव्य के कथा पात्रों में मानवीय एवं मानवेतर दोनों प्रकार के पात्र समाहित है। इस काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रेम के क्षेत्र में नायिकाएँ नायकों की अपेक्षा अधिक धैर्य शालिनी हैं। सूफी-काव्य परम्परा में नायक को प्रायः नायिका प्राप्ति हेतु सर्वस्व समर्पण करता हुआ दिखाया गया है। सूफी-काव्य समूह में वस्तु वर्णन की प्रणाली प्रमुखतः दृष्टिगत होती है। यथा—पनघट सरोवर, वाटिका, बारहमासा, बरात, युद्ध एवं ज्योनार आदि। रस की दृष्टि से सूफी-काव्य परम्परा का प्रमुख रस शृंगार ही है, जिसके प्रणय भाव के मूल में साहस एवं संघर्ष की भावना अनुस्यूत है। काव्य-रूप की दृष्टि से सम्पूर्ण सूफी-काव्य को कथा-काव्य कहा जा सकता है। सूफी-काव्य में अलंकारों के अन्तर्गत अन्योक्ति एवं रूपक का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। छन्द : प्रयोग में अधिकांशतः कवियों ने चौपाइयों के मध्य दोहा प्रयोग की पद्धति स्वीकार की है। सूफी-काव्य समूह के रचनाकारों में मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान शीर्षस्थ है और अन्य कवियों में मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मंझन, शेख नबी, कासिम शाह और नूर मुहम्मद आदि उल्लेखनीय हैं। सूफी-काव्य परम्परा के अन्तर्गत सन्त-काव्य परम्परा की मण्डलीय चेतना सगठनात्मक अभाव के कारण विकसित नहीं हो सकी।

राम-काव्य—राम-काव्य परम्परा में यदि कहीं मण्डलीय भावना दृष्टिगत होती है, तो वह रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत दर्शन पर आधारित राम-काव्य के सृजन में। रामानुजाचार्य ने शंकर के अद्वैत को आधार बनाकर विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार करके भक्ति का सुगम मार्ग प्रसारित किया। आगे चलकर स्वामी रामानन्द ने रामानुज के सिद्धान्तों को ग्रहण कर राम का लोक रक्षक रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। रामानुजाचार्य की दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण है और वह भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए पाँच प्रकार का रूप धारण करता है। भक्ति ही मुक्ति का साधन बन सकती है 'तत्त्वमसि' सूत्र को व्याख्यायित करते हुए रामानुज ने सगुणोपासना के

अन्तर्गत दास्य भाव पर आधृत तत्=उनका, त्वं=तू, असि=सेवक है, ऐसा विचार व्यक्त किया। भगवान् के शरणागत से ही जीव का परम कल्याण हो सकता है। उनके इन सिद्धान्तों को स्वीकार करने के कारण ही गोस्वामी तुलसीदास विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के कवि स्वीकार किये जाते हैं। विशिष्टाद्वैत दर्शन के द्वारा तुलसी और रामानन्द को विशेष रूप से प्रभावित करने के कारण ही रामानुज के द्वारा एक मण्डलीय काव्यधारा का क्षीण प्रवाह अवश्य प्राप्त होता है, जिसका प्रसार परवर्ती राम-काव्य के इतिहास में नहीं दिखाई पड़ता है। मध्य युग के उत्तरार्द्ध में राम-काव्य परम्परा में रसिक चेतना प्रादुर्भूत हुई, जिसके आधार पर रसिक सम्प्रदाय का विकास हुआ। राम की रस भक्ति एक सशक्त मण्डलीय चेतना से अनुप्राणित होकर रसिक साम्प्रदायिक साहित्य का उपजीव्य बनी।

कृष्ण-काव्य—भक्ति काल में व्रज प्रदेश में कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित आचार्यों द्वारा अपने-अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुसार उपासना का स्वरूप प्रस्तुत किया गया, जिसमें राधा और कृष्ण की उपासना से सम्बद्ध विभिन्न लीला भावों एवं उपासनापरक स्वरूपों का प्रतिपादन हुआ। इन सम्प्रदायों में दीक्षित कृष्ण भक्त कवियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुसार कृष्ण लीला का गान किया। साम्प्रदायिक विचारधारा के कारण इनकी काव्य प्रवृत्तियों में भी अन्तर दृष्टिगत होता है। जो कवि जिस सम्प्रदाय में रहा उसने उसी सम्प्रदाय के दर्शन को ग्रहण कर अपने-अपने काव्य प्रवृत्ति को दिशा प्रदान की। अतः साम्प्रदायिक दृष्टि से इन कृष्ण भक्त कवियों की काव्य प्रवृत्ति के पृथक्-पृथक् काव्य मण्डल परिलक्षित होते हैं। सम्प्रदायों के आधार पर कृष्ण भक्ति के कवियों के समूहों का विभाजन इस प्रकार मिलता है।

(अ) वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों का समूह—कृष्ण-भक्ति काव्य के काव्य समूहों में 'अष्टछाप' का काव्य समूह मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति की दृष्टि से सबसे सुस्पष्ट एवं सशक्त है। अष्टछापी कवियों के काव्य में वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से एक अनुशासित समानता दृष्टिगत होती है। 'अष्टछाप' की स्थापना सन् १५६५ ई० में आचार्य वल्लभ के पुत्र गोस्वामी विट्ठल नाथ ने की थी। वैसे तो वल्लभ-सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी भक्त उस समय थे, परन्तु जिन आठ भक्त कवियों को गोस्वामी विट्ठल नाथ ने अपने आशीर्वाद की छाप प्रदान कर उन्हें एक सूत्र में आबद्ध किया, वे 'अष्ट छाप' या 'अष्टसखा' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन आठ कवियों में चार आचार्य वल्लभ के शिष्य सूरदास कृष्णदास

और अन्य चार गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य-गोविन्द स्वामी, नन्ददास, छीत स्वामी और चतुर्भुज दास थे। ये आठों भक्त कवि गोवर्धन स्थित श्रीनाथ जी की नित्य लीला में अन्तरंग सखाओं के रूप में उनके साथ रहते थे। इसी धारणा के कारण उन्हें 'अष्टसखा' कहा जाता है। ये आठों भक्त कवि पुष्टिमार्गीय सेवा-विधान के अनुरूप श्री नाथ जी की सेवा में संलग्न रहते थे। वल्लभ-सम्प्रदाय की अष्टयाम सेवा-मंगलाचरण, श्रृंगार, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या आरती और शयन के वर्णन को इन अष्टछापी कवियों ने बड़े मनोयोग से प्रस्तुत किये हैं। इन आठों कवियों ने कृष्ण का लीलात्मक स्वरूप, लीला शक्ति एवं साम्प्रदायिक सेवा पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है कि उनमें एकसूत्रता परिलक्षित होती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में भी इनका स्वरूप सामान्य जन से भिन्न कृष्ण लीला के अभिन्न अगों के रूप में स्वीकार करने के कारण विशेष गौरवशाली है। इन आठ कवियों का महत्व इसलिए भी है कि इन्होंने कृष्ण के लीला गान और उनके रूप माधुर्य के प्रति गहरी आसक्ति व्यक्त की है। गीति काव्य परम्परा मे इन्होंने नूतन प्राण चेतना संचरित की। अष्टछापी कवियों के काव्य में कृष्ण का स्वरूप पूर्णानन्द-स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म स्वीकार किया गया है। इन्होंने अपनी उपासना पद्धतियों में वात्सल्य भाव की उपासना पर विशेष बल दिया। भगवान के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है। इसी दार्शनिक मान्यता के कारण अष्टछापी कवियों को पुष्टि मार्गी भक्त कवि भी कहा जाता है। भगवद् अनुग्रह को इन कवियों ने विशेष रूप से समर्थन दिया है। गोस्वामी विट्ठवल नाथ इस काव्य-मण्डल के केन्द्र बिन्दु थे।

(ब) **निम्बार्क-सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त कवियों का समूह**–निम्बार्क-सम्प्रदाय में आने वाले कवियों के काव्य का मुख्य विषय कृष्ण के वामांग मे विराजित राधा के साथ कृष्ण की आराधना है। सृष्टि की समस्त वस्तुओ के मूल स्रोत कृष्ण ही हैं। भक्तों पर कृपा करने हेतु वे अवतार धारण करते है। ब्रह्मा और शिव भी कृष्ण के चरणारविन्द का सेवन करते हैं। कृष्ण के चरणारविन्द का परित्याग कर जीवों की अन्य कोई भी गति नहीं है। दैन्य भाव से कृष्ण की कृपा सुलभ होती है, परन्तु रागमूला भक्ति से जीव की परम गति होती है। इन्हीं मान्यताओं को लेकर निम्बार्क-सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्ति काव्य का समूह काव्य अपनी काव्य चेतना का निर्धारण करता है। इस समूह काव्य के कवियों में श्री भटट श्री और परशुराम देव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं

(स) **राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त कवियों का समूह**—राधावल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण की अपेक्षा राधा का स्थान प्रमुख माना गया है। साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार वृन्दाविपिन बिहारी कृष्ण ही रसिक स्वरूप में एक मात्र नित्य बिहार करने वाले हैं। राधा उनकी पराप्रकृति हैं जो उनकी आह्लादिनी शक्ति भी हैं। समस्त विश्व इन्हीं युगलकिशोर की प्रतिच्छवि है। कृष्ण अपने ऐश्वर्य, ज्ञान शक्ति एवं पुरुषार्थ को अपने में अन्तर्भुक्त कर प्रेम एवं सौन्दर्य के साक्षात् विग्रह बन कर गोपियों के साथ लीलामग्न रहते हैं। राधावल्लभ होने के कारण वे रसराज शृंगार का विस्तार करने वाले हैं। इसी सिद्धान्त पर आधारित राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी काव्य प्रवृत्ति का निर्माण किया। राधावल्लभ-सम्प्रदाय का प्रवर्तन आचार्य हितहरिवंश गोस्वामी ने सन् १५३४ ई० में किया था। हितहरिवंश के अतिरिक्त इस समूह के कवियों मे दामोदरदास, हरिराम व्यास, चतुर्भुजदास, ध्रुवदास और नेही नागरीदास के नाम प्रमुख हैं। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति काव्य-मण्डल के केन्द्र विन्दु हितहरिवंश जी है।

(द) **सखी-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों का समूह**—सखी-सम्प्रदाय का प्रवर्तन स्वामी हरिदास ने किया था। सखी-सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त कवियो की दृष्टि में नित्य लीलाबिहारी श्यामसुन्दर की निकुंज लीलाओं का गान ही प्रमुख उद्देश्य रहा है। इन कवियों के अनुसार निकुंज बिहारी भाव रूप में कृष्ण का स्थान अन्य भावों की अपेक्षा सर्वोच्च है। ऐश्वर्य एवं प्रभुता से दूर रहकर निकुंज लीला में मग्न रहना ही कृष्ण की स्वाभाविक क्रिया है। स्वाभाविक शृंगार लीला में रत निकुंज लीला बिहारी कृष्ण की आराधना एवं नित्य बिहार दर्शन कराना सखी-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति काव्य समूह की प्रमुख प्रवृत्ति है। इस काव्य समूह के कवियों में हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठलविपुल, बिहारिनदास, नागरीदास और सरसदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्वामी हरिदास सखी-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्ति काव्य-मण्डल के केन्द्रस्थ व्यक्तित्व हैं।

(य) **चैतन्य-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों का समूह**—चैतन्य-सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुसार कृष्ण-काव्य का प्रमुख वर्ण्य-विषय ब्रजेद्रनन्दन कृष्ण की गोलोक लीला का विस्तार करना है। कृष्ण की अनन्त शक्तियों में एक आह्लादिनी शक्ति राधा हैं और उन्हीं की शक्ति का विलास समस्त सृष्टि में प्रसरित है। चैतन्य-सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियों के अनुसार ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण और गोलोकवासी कृष्ण में तात्विक अभिन्नता है और लीला

भाव का मुख्य आधार कान्ता भाव अथवा माधुर्य भाव है। इस काव्य समूह के पोषक कवियों मे रामराय, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, चन्द्रगोपाल, भगवानदास, माधवदास, माधुरी, भगवतमुदित आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भुज की ब्रजभाषा पाठशाला—रीतिकालीन काव्य समूह रचना प्रवृत्ति के पूर्व एक ऐसे काव्य पाठशाला का विवरण प्राप्त होता है, जिसने सुदूर भारत के पश्चिमी सीमान्त राज्य कच्छ (भुज) में लगभग दो सौ वर्षों तक कवियों को ब्रजभाषा काव्य रचना की शिक्षा प्रदान की। इस पाठशाला ने ब्रजभाषा कवियों की एक विशाल जमात तैयार की थी और यह एक प्रकार ऐसी शिक्षण संस्था थी जहाँ से लोग काव्य-शिक्षा प्राप्त करके ब्रजभाषा मे काव्य सृजन करना सीखते थे। ब्रजभाषा की इस पाठशाला का अनुसंधान डॉ० कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह ने अपने बड़ौदा विश्वविद्यालय के विभागीय शोध अभियान में सम्पन्न किया। उनके अनुसार—"सामान्यतः यह माना जाता है कि इस पाठशाला की स्थापना भारत के पश्चिमी सीमान्त के स्वतन्त्र राज्य कच्छ के अधिपति महाराव लखपति सिंह ने अपनी राजधानी भुज में संवत् १८०८ और १८१७ विक्रमी के बीच किसी समय की थी। कच्छ के राजकीय शिक्षा विभाग के एक अधिकारी से मुझे ज्ञात हुआ कि इसकी स्थापना महाराव ने संवत १८०५ में की थी।"[11] महाराज लखपति सिंह स्वयं एक उच्चकोटि के कवि थे। यह पाठशाला पूर्णतः आवासीय सस्था थी, जिसमें अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण होने के लिए विद्यार्थियों को पाँच वर्ष तक पाठशाला में अध्ययन कार्य करना पड़ता था। इसकी परीक्षा वर्ष में एक बार मौखिक रूप में होती थी। परीक्षा लेने के लिए एक त्रिसदस्यीय समिति का गठन किया जाता था, जिसमें कच्छ राज्य के श्रेष्ठ अधिकारी, सस्कृत पाठशाला के आचार्य और ब्रजभाषा पाठशाला के प्रधानाचार्य सम्मिलित होते थे। परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए छात्रों को विशिष्ट विषय पर काव्य सृजन करना पड़ता था और समस्यापूर्ति भी करनी होती थी। इस पाठशाला में काव्य सृजन को प्रोत्साहन देने के लिए महाराज लखपति सिंह के वंशज महाराज खेंगार तृतीय के समय में प्रसिद्ध साहित्य मर्मज्ञ एवं दीवान मणि भाई ने पुरस्कार प्रदान करने का नियम भी बनाया था। जो विद्यार्थी परीक्षा के अन्तिम समय में निश्चित विषय पर बावनी का सृजन करता था, उसे मणि भाई सौ कोरी पुरस्कार देते थे। कोरी भुज राज्य का एक प्रकार का सिक्का था, जो एक कोरी लगभग एक रुपये के बराबर होता था। संभवतः इसी कारण गुजरात में बावनी काव्य सृजन

की दीर्घ परम्परा प्राप्त होती है। गुजरात राज्य में बावनी काव्य सृजन की परम्परा को विकसित करने का प्रमुख श्रेय इस ब्रजभाषा पाठशाला को है।

राष्ट्र के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् कच्छ राज समाप्त हो गया और महाराज मदन सिंह के पश्चात् यह पाठशाला भारत सरकार के किसी अधिकारी के आदेश से बन्द कर दी गयी। मूलतः इस पाठशाला में जातियों, प्रान्तों एवं वर्गों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, यह सबके लिए उन्मुक्त रूप से खुली रही। इस पाठशाला के संवर्धन में महाराव लखपति सिंह एवं उनके वंशधरों का विशेष योग रहा।

भुज की ब्रजभाषा पाठशाला के आद्य आचार्य राजस्थान के किशनगढ़ नगर के जैन साधु श्री कनककुशल थे। महाराज लखपति सिंह ने इन्हे 'भट्टार्क' की पदवी से विभूषित कर इस पाठशाला का प्रथम अध्यक्ष बनाया था। इस पाठशाला की व्यवस्था के लिए महाराज ने आचार्य कनककुशल को तीन हजार रुपये वार्षिक आय का 'रेहा' नामक ग्राम भी दिया था।[12] पाठशाला के शिक्षार्थियों के भोजन एवं आवासीय समस्या का निदान स्वयं महाराज ही करते थे। आचार्य कनककुशल के पश्चात् जिन अन्य लोगो ने आचार्य पद को सुशोभित किया, उनकी नामावली इस प्रकार प्राप्त होती है—कुँअर कुशल जी, वीरकुशल जी, राजकुशल जी, जयकुशल जी, धर्म-कुशल जी, वल्लभकुशल जी, यौवन कुशल जी और भक्ति कुशल जी। आगे चलकर जैन आचार्यों के स्थान पर अन्य आचार्यों की नियुक्ति की गयी, जिसमें कवि गोप का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भुज की यह ब्रजभाषा पाठशाला विशिष्ट वर्ग के कवियों का निर्माण करती रही, परन्तु इन कवियों के द्वारा रचित काव्य समूह की रचना प्रवृत्ति किस प्रकार रही, इस पर प्रकाश नहीं पड़ सका है। आचार्य कवियों की जो रचनाएँ प्राप्त होती हैं, उनसे मात्र समूह काव्य की एक ही चेतना का स्पष्टीकरण हो पाता है और वह है महाराज लखपति सिंह का चरित्र वर्णन। समूह काव्य प्रवृत्ति का भले ही स्पष्टीकरण न हो, परन्तु आचार्य द्वारा अनुशासित एक ही सिद्धान्त पर काव्य रचना करने वाले कवियों को जिस प्रकार एक ही 'स्कूल' में रखा जाता है, उस सन्दर्भ में यह पाठशाला भी एक 'स्कूल' का कार्य करती रही और इस अर्थ में उसने मण्डलीय काव्य धारा को प्रवाहित करने में अवश्य योग दिया। भुज की इस ब्रजभाषा पाठशाला के काव्य-मण्डल के केन्द्रबिन्दु महाराज लखपति सिंह ही स्वीकार किये जा सकते हैं।

रीतिकालीन कवियों का काव्य समूह—रीतिकालीन कवियों का काव्य भी समूह काव्य रचना प्रवृत्ति के प्रति अग्रसर होता हुआ दिखाई पड़ता है। उस युग की साहित्यिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप कवियों का प्रवृत्ति विशेष के आधार पर वर्गीकृत विभाजन सहज रूप में किया जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज दरबार का परिवेश दरबारी कवियों को समूह काव्य रचना के लिए प्रेरित करता था। चूँकि रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे, जिससे उनकी दृष्टि चमत्कार प्रदर्शन के प्रति विशेष रूप से रही। रीतिकालीन कवियों का रूप अन्य युग के दरबारी कवियों के समान सभासद, सूक्तिकार और विशिष्ट व्यक्ति का रूप न होकर सामान्य ऐसे कवि का रूप था, जहाँ क्षणिक चमत्कार उत्पन्न करने वाली कविता को कण्ठस्थ करना उसके कर्तव्य की इतिश्री थी। राज दरबार मे आदर प्राप्त करना उनका प्रमुख उद्देश्य था। राज दरबार में रहने के कारण दरबारी वातावरण यथा--भवनों की सुन्दरता, विलास सामग्रियों की प्रचुरता, वाटिकाओं, विहार गृहों एवं प्रसाधन सामग्रियों आदि का वर्णन करना कवियों के लिए एक प्रकार से अनिवार्य सा हो गया था। फलतः उनकी काव्य रचना प्रवृत्ति में विभिन्नता के स्थान पर एकरूपता का समावेश होना स्वाभाविक था।

रीतिकालीन समूह काव्य रचना प्रवृत्ति के अन्य कारणों में कवियो की कुल परम्परा का भी नाम विशेष से उल्लेखनीय है, जहाँ कवियों की गुरु परम्परा चलती थी, जिसके कारण एक निश्चित काव्य समूह का प्रवाह दीर्घ अवधि तक चलता रहता था। इसके अतिरिक्त राजाज्ञा के कारण कवियो को ऐसे काव्य ग्रन्थों को सृजन करना पड़ता था, जिससे काव्य के गुण-दोष, अलंकार, रस, नायिका-भेद आदि का वर्णन हो सके। राज दरबार मे पाण्डित्य-प्रदर्शन के कारण कवियों का प्रमुख उद्देश्य कलात्मक सृजन हो गया था। रीतिकालीन काव्य के प्रमुख रचनात्मक तत्त्वों में भाषा, भाव, अलंकृति और वक्रोक्ति आदि की प्रधानता रही।

रीतिकाल के किसी भी कवि के द्वारा काव्य-मण्डल के निर्माण का विवरण नहीं मिलता। मात्र आगरा निवासी सुरति मिश्र ने लगभग सत्रहवीं शताब्दी में आगरा में एक विशिष्ट गोष्ठी का आयोजन किया था, जिसमें ब्रजभाषा की शुद्धता पर प्रकाश डाला गया था और कवियो को यह निर्देश दिया गया था कि वे काव्य में रस और अलंकार के उचित प्रयोग पर ध्यान दिया करें। इस गोष्ठी के सभापति सुरति मिश्र ही थे।

रीतिकालीन कवियों के काव्य मे मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति के निम्न वग

दृष्टिगत होते हैं।

अ–अलंकारवादी कवियों के काव्य में मण्डलीय भावना–रीतिकालीन कवियों में अलंकारवादी काव्य के सृजन में केन्द्रस्थ व्यक्तित्व और मुख्य प्रेरक तत्त्व के रूप में आचार्य केशवदास और उनकी 'कविप्रिया' का नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि 'कविप्रिया' के लगभग पचास वर्ष के बाद चिन्तामणि त्रिपाठी द्वारा अलंकारवाद के क्षेत्र में जिस परम्परा का श्रीगणेश हुआ, उसी परम्परा पर आगामी रीतिकालीन अलंकारवादी कवियों ने अपना मार्ग निर्धारित किया। परन्तु हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम 'कविप्रिया' के द्वारा ही अलंकार-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठापना हुई, जिससे रीतिकालीन कवियों को लक्षण ग्रन्थों के सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई। रीतिकाल में 'कविप्रिया' के केन्द्रस्थ होने के कारण अलंकार-सम्प्रदाय का एक काव्य-मण्डल लक्षित होता है। 'कविप्रिया' के मुख्य आधार ग्रन्थ संस्कृत के 'कवि कल्पलता वृत्ति' और 'काव्यादर्श' रहे। आचार्य केशव ने हिन्दी कवियों को अलंकार-सम्प्रदाय के उस पूर्व पक्ष से परिचित कराया जो भामह और उद्‌भट के समय में विकसित हुआ; उत्तर पक्ष का परिचय जो आनन्दवर्द्धन, मम्मट और विश्वनाथ को अभीष्ट था, उससे केशव उदासीन रहे।

अलंकारवादी कवियों के काव्य-मण्डल में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का विवेचन प्राप्त होता है। वस्तुतः संस्कृत ग्रन्थों के आश्रय एव गम्भीर चिन्तन के अभाव में कवियों के इस विवेचन में विशेष मौलिकता नहीं आ सकी है। यदि उनमें कहीं मौलिकता है भी तो मात्र विवेचन शैली में। अलंकारवादी कवियों के काव्य समूह में निम्न कवि और उनकी काव्य रचनाएं सम्मिलित की जाती हैं–मतिराम (ललित-ललाम और अलंकार-पंचाशिका), भूषण (शिवराज भूषण), गोप (रामालंकार, रामचन्द्र भूषण और रामचन्द्राभरण), रसिक सुमति (अलंकार-चन्द्रोदय), दलपतिराय (अलंकार-रत्नाकार), रघुनाथ (रसिक-मोहन), गोविन्द (कर्णाभरण), दूलह (कविकुल-कण्ठाभरण), सेवादास (रघुनाथ-अलंकार), रसरूप (तुलसी-भूषण), पद्माकर (पद्माभरण) और ग्वाल (भ्रम-भंजन)।

ब- रसवादी कवियों के काव्य में मण्डलीय भावना–रीतिकालीन रस-सम्प्रदाय के कवियों के काव्य समूह में भी केन्द्रीय स्थान आचार्य केशव और और उनकी 'रसिक-प्रिया' का रहा। हिन्दी रीतिकाव्य में 'रसिक-प्रिया' के द्वारा सर्वप्रथम रस सम्बन्धी लक्षण ग्रंथों के सृजन की परम्परा विकसित हुई और यही 'रसिक-प्रिया' रीतिकालीन रस चिन्तन में मण्डलीय भावना मे में केन्द्रस्थ स्थान को प्राप्त करने की अधिकारिणी सिद्ध हुई। 'रसिक प्रिया'

की सारी सामग्री संस्कृत ग्रंथों से ली गई है। इसमें शृंगार का प्रधान रूप में और अन्य रसों का गौण रूप में वर्णन हुआ है। आचार्य केशव ने 'रसिकप्रिया' में 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' शृंगार के जो भेद किये हैं, वे रुद्रभट्ट के 'शृंगार-तिलक' के अनुरूप हैं।

आचार्य केशव के बाद रीतिकाल में जो भी रस-सम्प्रदाय के कवियों के समूह काव्य का कवि हुआ, उसकी मुख्य प्रवृत्ति रस की विभावादि सामग्री के निरूपण के पश्चात् उसके समस्त भेदों का साधारण रूप से एवं शृंगार तथा उसके आलम्बन (नायक-नायिका) आदि के प्रमुख रूप से विवेचन करता रहा है। रसवादी कवियों के समूह काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं–चिन्तामणि (रस-विलास), तोष (सुधानिधि), सुखदेव मिश्र (रसरत्नाकार और रसार्णव), रसलीन (रस-प्रबोध), समनेस (रसिक-विलास) उजियारे (रस-चन्द्रिका), वेनीप्रवीन (नवरस-तरंग), पद्माकर (जगद्विनोद), नवीन (रंग-तरंग), ग्वाल (रस-तरंग) और चन्द्रशेखर बाजपेयी (रसिक-विनोद)।

उपर्युक्त दोनों मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त रीतिकाल में अन्य जो भी समूह काव्य दृष्टिगत होते हैं, उनमें किसी विशेष व्यक्ति का प्रभाव केन्द्रस्थ में नहीं दिखाई पड़ता, जिससे उससे मण्डलीय काव्य प्रवृत्ति के सन्निकट रखा जा सके। आचार्य केशवदास के कारण अलंकारवादी और रसवादी दोनों कवियों के काव्य समूह मण्डलीय भावना के समीप दिखाई पड़ते है। रीतिकाल के अन्य काव्य समूहों के अन्तर्गत छन्दों निरूपित काव्य समूह, रीतिबद्ध काव्य समूह, रीतिमुक्त काव्य समूह, नीतिकाव्य समूह और वीरकाव्य समूहों को स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु उनमें केन्द्रस्थ व्यक्तित्व के नियमन के अभाव में मण्डलीय अवधारणा नहीं लक्षित होती।

आधुनिक हिन्दी काव्य में मण्डलीय परिकल्पना का विकास—आधुनिक-युग के पूर्व हिन्दी काव्य की चेतना अपनी आध्यात्मिक दृष्टियों के कारण एक प्रकार से रूढ़ और परम्पराश्रित हो गई थी। आधुनिक-युग में नवीन सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि पूर्ववर्ती काव्यधारा के सभी बाँध टूटने लगे और काव्यधारा लौकिक धरातल पर प्रवाहित होने लगी। इसी के साथ हिन्दी काव्य यथार्थतः धरती की संवेदनाओं से जुड़ता गया। हिन्दी काव्य परम्परा में आधुनिक-युग सन् १८५७ से स्वीकार किया जाता है और इसी समय देशी शक्तियों ने अंग्रेजी के विरुद्ध एकजुट होकर स्तर पर विद्रोह किया। फलतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में समाप्त हो गई और भारत पर ब्रिटिश

साम्राज्य का सीधा शासन स्थापित हो गया। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक नीतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया कि भारतीयों को इस सन्दर्भ में नवीन दृष्टि से सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा।

वस्तुतः इन राजनैतिक परिस्थितियों के कारण हिन्दी काव्य की धारा पूर्ववर्ती काव्यधारा से भिन्न होती हुई नवीन दिशा का संधान करती हुई लक्षित होती है। जिसका उन्मुक्त प्रवाह भारतेन्दु-युग में दिखाई पड़ा और इसीलिए भारतेन्दु-युग को 'पुनर्जागरण-काल' कहा जाता है।

भारतेन्दु-युग का परिवेश और भारतेन्दु-मण्डल—सामान्यतः भारतेन्दु-युग १८५० ई० से १९०० ई० तक स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु-युग में राष्ट्र में राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन घटित हुए, जिनका सीधा प्रभाव साहित्य रचना पर भी पड़ा। इस युग में जन चेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित होती हुई दृष्टिगत होती है। अंग्रेजी प्रशासन की ओर से सुख की आशा के कारण भारतेन्दु-युग के प्रारम्भिक चरण के काव्य में राजभक्ति की भावना का उदय हुआ। भारतेन्दु युगीन कवियों को यह आशा थी कि प्रशासन की ओर से जनता का कष्ट दूर किया जायेगा, परन्तु कुछ ही दिनों में कवियों को अपनी यह आशा धूमिल दिखाई पड़ने लगी और उन्होंने यह समझ लिया कि उनकी यह आशा आकाश-कुसुमवत् है, जिसमें अंग्रेजों की कूटनीतियाँ छिपी हुई हैं। फलतः काव्य में जनता को उद्बोधित करने के लिए राष्ट्र प्रेम का स्वर मुखरित करना अनिवार्य सा हो गया। स्वयं भारतेन्दु ने जनता को प्रबोधित करने के लिए 'जातीय-संगीत' अर्थात् लोकगीत शैली पर राष्ट्रीय एवं सामाजिक कविताओं का सृजन प्रारम्भ किया। अंग्रेजों ने अपने निजी स्वार्थ के कारण भारतीय सम्पत्ति का शोषण प्रारम्भ कर दिया था। वे अपनी आर्थिक नीतियों के कारण सामन्तीय व्यवस्था से आगे पूंजीवादी व्यवस्था ग्रहण कर चुके थे। अंग्रेजी प्रशासन की ओर से समय-समय पर मालगुजारी की दरों में वृद्धि करने का आदेश दे दिया जाता था। आये दिन देश में अकाल भी पड़ते रहते थे, परन्तु अकाल पीड़ितों की सुरक्षा का प्रशासन की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं हो पाता था, प्रत्युत प्रशासन इस दशा में भी अपनी रंग-रलियाँ मनाने में मस्त रहता था। इसी कारण भारतेन्दु युगीन कवियों के काव्य में मालगुजारी का भार, अकाल एवं महामारी आदि की भयंकरता का वर्णन प्राप्त होता है।

इन आर्थिक और राजनैतिक परिस्थियियों के साथ-साथ काव्य जगत पर शिक्षा के का भी विशेष प्रभाव पड़ा वस्तुत ज्ञान व

साहित्य परम्पराभुक्त हो जाने के कारण अविकसित सा हो गया था और वह मूलत: आध्यात्मिक एवं पारलौकिक चेतनाओं से संचालित था। पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से भारत ने भी ज्ञान विज्ञान के भौतिक एवं इहलौकिक विचारों को ग्रहण करना प्रारम्भ किया। ईसाई मिशनरियों ने इस क्षेत्र मे विशेष योग दिया। उन्होंने अपने धर्म प्रचार हेतु अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय चेतना को नवोन्मेष प्रदान किया। इस सन्दर्भ में अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए कलकत्ते में फोर्ट विलियम कालेज (१८०१ ई०) की स्थापना का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिसके द्वारा देश भाषा में पाठ्य पुस्तकें, कोश एवं व्याकरण आदि तैयार किये गये। इस कालेज ने भारतीय भाषाओ मे गद्य-लेखन को प्रेरित करने में विशेष योग दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में भी रेल, बस एवं स्टीम इंजन आदि के प्रचार से राष्ट्रीय भावना एवं सुविचारित एकता को विशेष सम्बल प्राप्त हुआ। इन साधनों के कारण पत्र-पत्रिकाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने में विशेष सहायता प्राप्त हुई, जिससे साहित्य जनमानस के और अधिक समीप पहुँचने लगा। मुद्रण यन्त्रों का प्रचार भी भारतेन्दु-युग की साहित्यिक धारा को नवीन मोड़ देने में विशेष कारगर सिद्ध हुआ। परिणा-मत: साहित्यकार एवं समाज का सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ, जिससे साहित्य में जन भावना का प्रसार हुआ।

इस युगीन परिवेश का सीधा प्रभाव भारतेन्दु-युग के काव्य पर पडा, जिससे भारतेन्दुयुगीन काव्य चेतना पूर्ववर्ती मध्यकालीन काव्य चेतना से भिन्न दृष्टि ग्रहण करने के कारण आधुनिक काव्य प्रवृत्ति का सूत्रपात कर सकी। परन्तु किसी भी युग का काव्य पूर्ववर्ती काव्य परम्परा से सर्वथा भिन्न नहीं हो जाता। वह क्रमशः पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का परित्याग करते हुए नवीन काव्य चेतना की ओर उन्मुख होने का प्रयास करता है। इसी कारण भारतेन्दु युगीन कवियों ने जहाँ नव्य बोध से प्रभावित होकर नवीन काव्य प्रवृत्ति का सूत्रपात किया, वहीं पारम्परिक भक्तिकालीन एव रीतिकालीन भावधाराओं को अपने में संजोये रखा। अतः भारतेन्दु-युग के काव्य में प्राचीन एवं नवीन दोनों काव्य प्रवृत्तियों का उचित समन्वय हो सका।

मण्डलीय भावना की दृष्टि से भारतेन्दु ने मध्यकालीन काव्य प्रवृत्तियो का पल्लवन तो किया ही, साथ ही नवीन परिवेश से संस्कारित होते हुए मातृभूमि प्रेम स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग गोरक्षा बाल विवाह निषेध शिक्षा प्रसार की मद्य निषेध भ्रूणहत्या की निन्दा आदि अनेक

नवयुगीन काव्य विषयों को ग्रहण करते हुए अपने सहयोगी कवियों को भी इन विषयों पर काव्य सृजन के लिए प्रेरित किया। उनके काव्य-मण्डल की प्रमुख विशेषता राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष है। अपने काव्य-मण्डल के निर्माण के समय भारतेन्दु का ध्यान ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसाफिकल-सोसाइटी आदि संस्थाओं के द्वारा जन जीवन को प्रभावित करने वाली दृष्टियों की ओर भी गया, जिससे उनके मण्डलीय काव्य में सामाजिक भावना को यथार्थ एवं सशक्त स्वर प्राप्त हो सका। भारतेन्दु-युग में अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन के प्रचार से अन्त-र्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान से भारतीयों का परिचय हुआ, जिससे राष्ट्रीय भावना को और अधिक दृढ़ता प्राप्त हुई। समाचार पत्रों के प्रकाशन से भी जन जागरण में विशेष योग प्राप्त हुआ। इस प्रकार भारतेन्दु के मण्डलीय काव्य की मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रीय भावना और जनजागरण की ओर क्रमशः उन्मुख होती चली गयी, जिसका विकास आगे चलकर द्विवेदी-युग में द्विवेदी और सनेही मण्डलों के कवियों के काव्य में लक्षित होता है।

भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने परम्परित विषयों के अन्तर्गत भक्ति भावना, रीतिकालीन शृंगारिकता और समस्यापूर्ति आदि के प्रतिपादन पर बल दिया। अतः वे रीतिकालीन परिवेश से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सके। वस्तुतः भारतेन्दु-मण्डल के कवियों का युग एक सन्धि-काल था, जहाँ भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियाँ परस्पर प्रभावित हो रही थीं। फलत उनके काव्य-मण्डल में प्राचीनता और नवीनता का कोलाहल समान स्तर पर विद्यमान है। काव्य भाषा के क्षेत्र में भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने परम्परित ब्रजभाषा को ग्रहण किया। रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रयुक्त कवित्त और सवैया छन्द भारतेन्दु-मण्डल के काव्य में गृहीत हुए। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में काव्य रचना करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु ब्रजभाषा के माधुर्य को वे त्याग नहीं सके। परिणामतः उनके मण्डल के समस्त कवियों ने अपनी काव्य भाषा ब्रजभाषा ही रखी। यद्यपि गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु खड़ी बोली को स्वीकार कर चुके थे, परन्तु कृष्ण भक्ति धारा में रंगे होने और ब्रजभाषा की माधुरी पर आसक्त होने के कारण वे ब्रजभाषा से असम्पृक्त न हो सके। उस समय उर्दू को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के कारण हिन्दी को उचित स्थान प्राप्त करने में कठिनाई हो रही थी। अतएव भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने मातृभाषा-प्रेम को अपने काव्य का प्रमुख वर्ण्य विषय बनाया। वस्तुतः भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवियों को उर्दू भाषा से कोई विरोध नहीं था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण
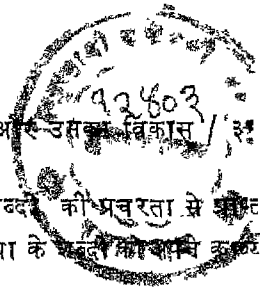
भारतेन्दु की 'फूलों का गुच्छा' रचना में उर्दू शब्दों की प्रचुरता से ज्ञात होता है। उनके मण्डल के कवियों ने भी उर्दू भाषा के शब्दों को काव्य में उचित स्थान दिया।

भारतेन्दु-मण्डल के कवियों की एक प्रवृत्ति लोकसंगीत की शैली के ग्रहण की भी रही। वस्तुतः वे पूर्ववर्ती कवियों के समान पारलौकिक तत्त्वों के प्रस्तोता कवि न होकर इस धरती की संवेदनाओं के कवि थे और जनमानस में उनकी गहरी पैठ थी। फलतः उन्होंने लोकसंगीत शैली के अन्तर्गत विभिन्न लोकगीतों की रचना कर भारतीय जनजीवन का उसमें यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। लोकगीतात्मक रचनाओं के माध्यम से भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने काव्य को और अधिक लोकप्रिय बनाया। मूलतः समकालीन विविध परिस्थितियों ने उन्हें परस्पर विरोधी दृष्टियों को ग्रहण करने के लिए बाध्य किया, जिससे उनकी काव्य चेतना में एक समन्वयात्मक चेतना का विकासमान रूप दृष्टिगत होता है।

द्विवेदी-युग का परिवेश और द्विवेदी-मण्डल—सामान्यतः द्विवेदी-युग १९०० ई० से १९२० ई० तक स्वीकार किया जाता है। भारतेन्दु-युग में जिन आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर पड़ा, वही परिस्थितियाँ द्विवेदी-युग में पूर्ण उत्कर्ष प्राप्त कर भारतेन्दु युगीन काव्य प्रवृत्ति को और नवीन तथा सशक्त बनाती हुई दिखाई पड़ती हैं। भारतेन्दु-युग में नवीन शिक्षा-पद्धति, वैज्ञानिक शोध, पुरातत्त्व विभाग के अन्वेषण के परिणामस्वरूप समाज, स्त्री-शिक्षा, धर्म एवं राज-नैतिक विचारों के क्षेत्र में जो नवीन चेतना जागृत हुई थी, उसी चेतना का पूर्ण विकास द्विवेदी-युग में हुआ। भारतीयों ने नवयुग के बोध के कारण मध्ययुगीन सामाजिक एवं धार्मिक कर्मकाण्डों का पुनर्निरीक्षण किया और वैज्ञानिकता पर आधारित बौद्धिक दृष्टि से उसका नवीन मूल्यांकन भी किया। तत्कालीन परिवेश के अनुरूप गीता एवं उपनिषदों की नये सिरे से व्याख्या की गयी। एक पराधीन राष्ट्र के लिए गीता के कर्मयोग का सिद्धान्त विशेष लाभप्रद सिद्ध हुआ। अब ईश्वर में भगवत् तत्त्व की अपेक्षा मानवीय तत्त्वों का अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। परिणामतः द्विवेदी-युग के कवियों ने ईश्वर को मन्दिर में न दिखाकर निर्धनों की झोपड़ी में दिखाया। लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनीबेसेण्ट, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, योगी अरविन्द, महात्मा गाँधी आदि भारत के नवनिर्माताओं ने गीता एवं उपनिषदों की व्याख्या करके यह प्रतिपादित किया कि मानव-सेवा ही मानव का श्रेष्ठ धर्म है फलतः द्विवेदी-युग के साहित्य में मानवतावाद की

प्रबल रूप में प्रतिष्ठा हुई।

आर्य-समाज के प्रभाव से द्विवेदी-युग के साहित्य में सुधारवाद की भावना का प्रसार हुआ। तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलनों में गाँधी जी का आन्दोलन मात्र राजनैतिक आन्दोलन ही नहीं था, अपितु नारी जागरण के लिये शंखनाद तुल्य था। उनके आन्दोलन ने नारी को स्वाधिकार प्राप्त करने के लिए सचेष्ट किया। गाँधी जी के आन्दोलन का प्रमुख अंग हरिजन-द्वार था। जब सन् १९०४ में बंग-भंग हुआ, तो स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप राष्ट्रीय भावना को और सुदृढ़ सम्बल प्राप्त हुआ। सन् १९२१ में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन से राष्ट्रीय भावना को नूतन चेतना प्राप्त हुई। १९०४ ई० में जापान ऐसे लघु राष्ट्र के द्वारा रूस पर विजय प्राप्त होने के कारण भारतीयों में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति की नव आशा का अंकुरण हुआ। १९१४–१८ ई० एवं १९३८–४५ ई० के दो भीषणतम महायुद्धों ने हिन्दी-काव्य में अन्तर्राष्ट्रीय भावना को प्रसारित करने में विशेष योग दिया। फलतः द्विवेदी-युग के कवि विदेशी साहित्य के सम्पर्क में आये और विश्व की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक विचारधाराओं से प्रेरित होकर अपने काव्य को नवीन दिशा प्रदान की। सन् १९०१ मे नागरी-प्रचारिणी-सभा-काशी और सन् १९१० में स्थापित हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रयाग के हिन्दी साहित्य प्रचार ने हिन्दी प्रेमियों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। मदनमोहन मालवीय और महात्मा गाँधी की प्रेरणा से द्विवेदी युगीन कवियों का मातृभाषा-प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना का प्रमुख अंग बना।

द्विवेदी-युग में पाश्चात्य चित्रकला एवं संस्कृति का प्रभाव भारतीय चित्रकला पर भी पड़ा। तत्कालीन ट्रावनकोर के राजा रविवर्मा के चित्रों के वर्ण्य-विषय प्रमुखतः पौराणिक एवं धार्मिक थे। उनके चित्रों के भाव स्पष्ट, माधुर्यपूर्ण एवं विशेष आकर्षक रहते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में राजा रविवर्मा के चित्रों को प्रकाशित कर अपने मण्डल के कवियों को उन चित्रों पर आधारित काव्य सृजन का निर्देश दिया। उन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशित इन चित्रों पर आधारित काव्य सृजन के द्वारा अपने मण्डल के कवियों को एक सूत्र में आबद्ध किया।

उपर्युक्त सभी परिस्थितियों एवं परिवेश का प्रभाव द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्ति पर पड़ा। नूतन परिवेश के प्रभाव से काव्य मे जो नवीन परिवर्तन घटित हुए, उसी की आधारशिला पर महावीरप्रसाद द्विवेदी का काव्य-मण्डल विकसित हुआ आचाय महावी द्विवेदी सन १९०३ में

'सरस्वती' के माध्यम से जब हिन्दी काव्य क्षेत्र में आये, तब उन्होंने देखा कि हिन्दी की पूर्ववर्ती काव्य चेतना भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध से लेकर भारतेन्दु-युग तक शृंगारिकता से ओतप्रोत है। परिणामस्वरूप उसमें जड़ता आ गयी है। समस्यापूर्ति का दौर रीतिकाल से लेकर भारतेन्दु-युग तक व्याप्त है और उसमें पूर्ति करने की प्रतिस्पर्धा में कवियों की मौलिक प्रतिभा का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। द्विवेदी जी की दृष्टि में समस्यापूर्ति हीन कोटि का काव्य है और उसमें मात्र तुकबन्दी की ही प्रधानता रहती है। फलतः उन्होंने समस्यापूर्ति, नायिका-भेद एवं शृंगारिक वर्ण्य-विषयों का विरोध किया और काव्य में लोक मर्यादा की दृष्टि से मानवतावाद की प्रतिष्ठा की। द्विवेदी युगीन मानवतावादी काव्य प्रवृत्ति को पल्लवित करने में तद्युगीन सास्कृतिक आन्दोलनों का प्रभाव तो रहा ही, साथ ही आचार्य द्विवेदी की मर्यादावादी नीति भी उसमें सहायक रही।

द्विवेदी-युग में मुद्रण कला एवं पत्र पत्रिकाओं के प्रचार से भी हिन्दी काव्य की दिशा में परिवर्तन हुआ। अब काव्य दरबार या गोष्ठी का काव्य न होकर शिक्षित जनता का काव्य बना। महावीरप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि हिन्दी भाषा की ओर भी गयी और उन्हें यह अखरा कि शिक्षित जनता की गद्य भाषा खड़ी बोली और पद्य की भाषा ब्रज हो। भाषा सम्बन्धी इस द्वैत को उन्होंने निर्मूल करने का बीड़ा उठाया और अपने काव्य-मण्डल के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि यदि गद्य खड़ी बोली में रचा जा सकता है, तो पद्य भी। उनके इस प्रयास से भारतेन्दु-मण्डल के कवियों की ब्रजभाषा द्विवेदी-मण्डल के कवियों में आकर खड़ी बोली में परिवर्तित हो गयी। उन्होंने जून सन् १९०० की 'सरस्वती' में 'हे कविते' शीर्षक अपनी रचना द्वारा ब्रजभाषा के परम्परित प्रयोग पर क्षोभ प्रकट किया और कवियों को खड़ी बोली के ग्रहण का निर्देश दिया। द्विवेदी जी के इस प्रोत्साहन से उनके मण्डल के कवियों ने खड़ी बोली को इस प्रकार परिष्कृत किया कि उसमें भी ब्रजभाषा के समान लालित्य एवं मार्दव का समावेश हो सका और यह शंका निर्मूल हो गयी कि खड़ी बोली के द्वारा सुकोमल अनुभूतियों को नहीं अभिव्यक्त किया जा सकता। द्विवेदी-मण्डल के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'जयद्रथ-वध' और 'भारत-भारती' ने खड़ी बोली को काव्य-भाषा के सिंहासन पर विराजित कर उसके विजय का एक प्रकार से शंखनाद किया।

पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से द्विवेदी-मण्डल के कवियों ने छोटी सी छोटी वस्तु को काव्य का वर्ण्य-विषय स्वीकार किया। आधुनिक बुद्धिवाद के कारण द्विवेदी-मण्डल के कवियों में स्वच्छन्दतावादी विचारों का समावेश

लक्षित होती हैं। सनेही जी ने देखा था कि भारतेन्दु युगीन कवि जहाँ ब्रजभाषा के प्रति आसक्त होकर भक्ति एवं शृंगार के वर्णन में तन्मय हैं, वहीं द्विवेदी युगीन कवि खड़ी बोली के पक्षधर बन कर मानवतावाद एवं लोक मंगल की भावना के प्रतिपादन में इस प्रकार संलग्न हैं कि काव्य से शृंगार को बहिष्कृत करना चाहते हैं। उन्हें भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन कवियों की यह हठ धर्मिता उचित नहीं प्रतीत हुई। फलतः सनेही जी ने अपने काव्य-मण्डल के द्वारा जहाँ ब्रजभाषा को ग्रहण किया, वहीं खड़ी बोली मे भी काव्य रचनाएँ कीं। उन्होंने यदि शृंगार और भक्ति पर बल दिया तो मानवतावाद को भी व्याख्यायित किया। यहाँ तक कि द्विवेदी युगीन इति-वृत्तात्मकता से आगे बढ़कर छायावादी काव्य सौन्दर्य की सूक्ष्म चेतना पर भी अपनी दृष्टि डाली। भारत में १९२८ में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद हिन्दी काव्य में समाजवादी विचारों का प्रसार प्रारम्भ हुआ। समाजवादी सिद्धान्तों से प्रभावित होकर सनेही जी ने अपने काव्य द्वारा क्रान्तिकारी एवं ओजस्वी राष्ट्रीय भावना को सर्वप्रथम हिन्दी काव्य मे स्वर प्रदान किया। इस प्रकार उनके द्वारा निर्मित काव्य-मण्डल में अनेक युग की काव्य प्रवृत्तियाँ समाहित हो गयीं।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने काव्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा तो कर दी थी, परन्तु खड़ी बोली काव्य भाषा को ब्रजभाषा के परम्परित छन्दो घनाक्षरी एवं सवैया में किस प्रकार अवतरित कराया जाय, यह एक जटिल समस्या थी। सनेही जी ने स्वयं और अपने मण्डल के कवियों के द्वारा इस समस्या का समाधान करके घनाक्षरी और सवैया छन्दों को खड़ी बोली मे इस प्रकार प्रतिष्ठित किया कि यह संदेह मिट गया कि ब्रजभाषा के घना-क्षरी और सवैयों का माधुर्य खड़ी बोली के घनाक्षरी एवं सवैयों में नहीं आ सकता। इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने भारतेन्दु और द्विवेदी-मण्डल की काव्य धाराओं के अन्तराल का परिहार कर दोनों के मध्य का समन्वयात्मक पथ ग्रहण किया। फलतः न वे शृंगारिकता का बहिष्कार ही कर सके और न ही शृंगारिकता के द्वारा जनमानस को अधःपतन की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया। उन्हें न तो ब्रजभाषा का मोह ही जकड़े रहा और न वे खड़ी बोली का झंडा लेकर उसके समर्थन के वाद विवाद में संलग्न हुए।

द्विवेदी-युग के बाद आधुनिक हिन्दी काव्य में कोई ऐसा काव्य-मण्डल नहीं दृष्टिगत होता है, जिसमें उसका कोई मूर्त रूप दिखायी पड़े। छाया-वाद एक प्रकार की काव्य प्रवृत्ति की ही है "इसी प्रकार व्यक्ति

६. (a) N. webster : webster's third New International Dictionary valume–"School–(a) The disciplas or fallowers of a teacher.

(b) Persons who held a common, doctrine or accept the same teachings or fallow the same intellectual methods" P. 2031

७. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पृ. ७३

८. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, १२४

९. डॉ० गंगासागर राय : हिन्दी काव्य मीमांसा, पृ. १६९

१०. उपरिवत्

११. डॉ० कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह : शोध साधना, पृ. १०

१२. वही पृ. ३६

और सनेही-मण्डल के कवियों की काव्य साधना द्विवेदी-युग की परवर्ती छायावादी और प्रगतिवादी काव्य धाराओं से तथा अपनी स्वतन्त्र दिशा का अनवरत निर्माण करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सनेही और उनके मण्डल की काव्य चेतना अपने समसामयिक साहित्यिक नेता महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके मण्डल की काव्य चेतना की तुलना में आधिकारिक नहीं बन सकी। इसी प्रकार छायावादी और प्रगतिवादी काव्य धाराओं की तुलना में भी सनेही और उनके मण्डल के कवियों की काव्य दृष्टि पृथक् स्थान नहीं अर्जित कर सकी। सनेही और उनके मण्डल के कवि अपने काव्यादर्शों और काव्य साधना के क्षेत्र में एक निष्ठ रह कर युग बोध को आत्मसात करते हुए भी अपने पथ से विचलित नहीं हुए। संभवतः इसीलिए आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में द्विवेदी-युग के समान सनेही-युग की कल्पना संभव नहीं हो सकी।

पूर्व काव्य परम्पराएँ और सनेही-मण्डल—आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा में जब गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का आगमन हुआ, तो हिन्दी कविता भारतेन्दु युगीन काव्यादर्शों से मुक्त होकर महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में विषयवस्तु, भाषा और अभिव्यक्ति के स्तरों पर नवीन मान्यताओं से संस्कारित होने की प्रक्रिया से गुजर रही थी। लेकिन साथ ही भारतेन्दु-युग की किरणों के प्रकाश से हिन्दी काव्य जगत अंशतः आलोकित भी हो रहा था। इसीलिए भारतेन्दु युगीन स्वीकृत अनेक काव्य विषय द्विवेदी युगीन काव्य परम्परा में भी मान्य हुए।

भारतेन्दु-युग के कवियों ने शृंगार कालीन सामन्ती संस्कृति का मोह परित्याग कर जनवादी भावनाओं का पोषण किया। उन्होंने जनमानस का संस्पर्श कर लोक संस्कृति की सुरक्षा का भी प्रयास किया। भारतेन्दु-युग के कवियों ने सामाजिक अत्याचारों—बाल—विवाह, अनमेल—विवाह, विधवाओं की समस्या, आलस्य और मद्य-सेवन इत्यादि पर दृष्टिपात कर इन सामाजिक कुरीतियों का परित्याग करने के लिए अथक प्रयास किया। सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य पर भारतेन्दु युगीन जनवादी विचार धारा का प्रभाव दिखाई पड़ता है।[1] भारतेन्दु युगीन कवियों के काव्य में राजभक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है। उनके काव्य में राजभक्ति और देशभक्ति की मूल भावना राष्ट्र प्रेम की है, जो देश भक्ति भावना से संप्रेरित रही है। सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में भारतेन्दु युगीन राजभक्ति भावना का विकास नहीं दिखाई पडता। राजभक्ति भावना का स्वस्थ एवं परिष्कृत रूप व्यक्ति प्रशस्ति काव्य धारा के रूप में यहाँ अवश्य लक्षित होता है। सनेही-

विषयों को अपनी काव्य रचनाओं में अभिव्यक्ति दी। मध्यकाल से लेकर प्रगतिवादी युग तक के प्रायः सभी काव्य विषय उनके काव्य में प्राप्त होते है। साथ ही द्विवेदी युगीन कवियों के समान सनेही-मण्डल के कुछ कवि चित्राधारित काव्य सृजन में भी प्रवृत्त हुये।[8]

द्विवेदी-युग में परम्परित व्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को ग्रहण किया गया। सनेही-मण्डल के कवियों ने भी भाषा परिवर्तन की इस दृष्टि को ग्रहण करते हुए व्रजभाषा के साथ-साथ खड़ी बोली को भी काव्य भाषा के लिए अपनाया, लेकिन व्रजभाषा का सर्वथा परित्याग नहीं कर सके। द्विवेदी-युग में वर्ण्य-विषय के अनुरूप छन्द: प्रयोग के क्षेत्र में भी वैविध्य दृष्टिगत होता है। द्विवेदी-युग के कवियों ने रोला, कुण्डलियाँ, सरसी, हरिगीतिका, लावनी, वीर आदि छन्दों को काव्य सृजन के लिए उपयुक्त समझा। सनेही-मण्डल के कवियों ने भी इन छन्दों को अपनी रचनाओ मे स्थान दिया, साथ ही वे उर्दू छन्दों की रचना में भी प्रवृत्त हुए।

मूलतः सनेही-मण्डल की काव्य प्रवृत्ति को भारतेन्दु तथा द्विवेदी युगीन दोनों काव्य प्रवृत्तियाँ अनुप्रेरित एवं प्रभावित करती हुई दृष्टिगत होती है।

सनेही-मण्डल का युग-प्रवाह—

राजनैतिक—सन् १९१५ में गाँधी जी अफ्रीका से भारत लौटे। उन्होंने देश की विभिन्न राजनैतिक स्थितियों का अवलोकन किया। अंग्रेजों के अत्याचार को देखकर गाँधी जी ने 'असहयोग-आन्दोलन' प्रारम्भ किया। क्रमशः भारतीय राजनीति पर उनका प्रभाव बढ़ता गया। फलत: सन् १९२१ में 'प्रिन्स ऑफ वेल्स' जब भारत पधारे, तब उनका बहिष्कार किया गया। क्योंकि गाँधी जी के असहयोग-आन्दोलन ने राष्ट्र के कर्णधारों को जागृत करना प्रारम्भ कर दिया था। ५ फरवरी १९२२ में चौरी चौरा काण्ड के बाद गाँधी जी ने अपने आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

सन् १९२८ मे भारत में 'साइमन कमीशन' का आगमन हुआ, जिसका उद्देश्य यह ज्ञात करना था कि क्या भारतीयों में यह क्षमता है कि वे स्व-शासन का दायित्व वहन कर सकें। इस कमीशन का स्वागत भारत में 'गो-बैक' के नारों से हुआ। इसी आन्दोलन में पुलीस के अमानुषिक लाठी प्रहार से पंजाब केसरी लाला लाजपतराय की हत्या हुई। १२ मार्च १९३० को गाँधी जी की प्रसिद्ध ऐतिहासिक 'दण्डी-यात्रा' का शुभारम्भ हुआ। ६ अप्रैल को दण्डी में नमक कानून भंग हुआ। 'सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन' ने को नाकों चने चबवाये कारागार ठसाठस भर गया ९० हजार ही बन्दी बनाये गये २८ जनवरी १९३१ को गाँधी जी कारागार

सांस्कृतिक एवं धार्मिक--सनेही-युग में धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्राय: वही चेतनाएँ दृष्टिगत होती हैं, जो भारतेन्दु और द्विवेदी-युग मे विद्यमान थी। ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, थियोसाफिकल-सोसाइटी और राम कृष्ण मिशन आदि समाज सुधारक संस्थाओं के सिद्धान्तों एवं उपदेशों से सनेही-मण्डल के कवि भी प्रेरित एवं प्रभावित हुए। ब्रह्म-समाज के प्रमुख उद्देश्य जाति प्रथा के बहिष्कार के अनुरूप ही सनेही-मण्डल के कवि वचनेश मिश्र ने अपनी 'शबरी' रचना में जाति-पाँति के वैषम्य का विरोध किया। आर्य-समाज ने बाल-शिक्षा पर विशेष बल दिया तथा हिन्दू धर्म का पुनर्मार्जन करते हुए सामाजिक रूढ़ियों के समूलोच्छेदन में अथक प्रयास किया। सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी, अनूप शर्मा 'हितैषी' आदि कवियों ने आर्य-समाज के सिद्धान्तानुरूप हिन्दू समाज को अपनी रचनाओं द्वारा जागृत किया। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' सेवा-भाव को मानव जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करते हैं--

"माता के वात्सल्य प्रेम मे, सेवा-व्रत के सुदृढ़ नेम में,
प्रेम परिप्लुत उर उदार में, दीनों दुखियों की पुकार में,
इनमें मिला भिन्न रूपों में, तेरा-ही उजियारा ॥"[11]

सनेही-मण्डल के कवियों को धार्मिक क्षेत्र में भी अराजकता का वातावरण दृष्टिगत हुआ। तन्त्र-मन्त्रों, टोना-टोटकों, मठ, मन्दिरों, व्रत-कथाओं मे ही हिन्दू धर्म शेष रह गया था। उस समय पितृ जलार्पण के प्रश्रय से पुजारियों का शरीर पोषित होता था, गुरु वाक्य ही नृपाज्ञा के रूप में था, महात्माओं की धूनी का प्रभाव चतुर्दिक प्रसरित था, साधुओं एवं सन्तों की कपट-नौका से ही हिन्दू समाज भवसागर का सहज ही संतरण करना चाहता था। वस्तुतः धार्मिक क्षेत्र में भी भारतीय जनता का आर्थिक शोषण हो रहा था और वह उसे दिग्भ्रमित होकर स्वीकार करने के लिए बाध्य थी।

सनेही-मण्डल के कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में समाज में व्याप्त धार्मिक विषमताओं का व्यंग्यात्मक चित्रांकन किया है। स्वयं सनेही जी ने अपनी वाणी द्वारा धर्माचार्यों एवं पुरोहितों के बाह्याडम्बर को इन शब्दो मे मुखरित किया है--

"भव भ्रम में क्यों व्यर्थ चित्त अपना भटकायें।
है संसार असार न इसमें मन अटकायें ॥
यही ज्ञान की बात, पराये मत्थे खाकर।
बैठ कहीं एकान्त रटर माला सटकायें ॥"[12]

-मण्डल के कवियों ने कृषि प्रधान देश भारत के कृषकों

एक मंच पर एकत्रित होने के लिए आमन्त्रित किया था। मिश्र जी के इस काव्य-मण्डल में पं० लालताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित', श्री व्रजभूषण लाल 'भूषण', पं० रामनारायण तिवारी 'प्रभाकर' और श्री मुकुन्द जी प्रमुख थे।[14]

पं० प्रतापनारायण मिश्र के निधनोपरान्त पं० लालताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित', श्री व्रजभूषण लाल 'भूषण', श्री मुकुन्द जी, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' और उनके सहकर्मियों ने २० दिसम्बर १८६६ में 'रसिक-समाज' नामक एक काव्य संस्था स्थापित की। पं० लालताप्रसाद त्रिवेदी ललित' सन् १६०१ तक इस काव्य संस्था के सभापति रहे।[15] ललित जी के दिवंगत होने पर श्री रामरत्न 'रत्नेश' इसके सभापति निर्वाचित हुए। उसी समय पूर्ण जी उप सभापति और श्री सेवक जी मन्त्री पद पर नियुक्त हुए। पूर्ण जी के निधनोपरान्त 'रसिक-समाज' के क्रिया कलाप समाप्त हो गये।[16]

श्री हिन्दी साहित्य-मण्डल कानपुर—'रसिक-समाज' के अवसान के कई वर्ष पश्चात् कानपुर के काव्य रसिकों का ध्यान पुनः एक काव्य-मण्डल के निर्माण की ओर गया। परिणामस्वरूप संवत् १६८० वि० रामनवमी के पुनीत अवसर पर पं० श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा', पं० चन्द्रनाथ शास्त्री 'द्विजहंस', पं० अवधबिहारी मालवीय 'अवधेश', प० सूर्यकुमार पाण्डेय 'दिनेश', पं० गदाधर प्रसाद त्रिपाठी 'प्रेमीहरि', प० रमाकान्त मिश्र, पं० भैरवदत्त मिश्र 'कवीन्द्र' और रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' इन नौ महानुभावों ने 'श्री हिन्दी साहित्य-मण्डल कानपुर' नामक काव्य-मण्डल की स्थापना की।[17] इसे प्रायः लोग 'बिहारी-स्कूल' भी कहते हैं। क्योंकि पं० श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' इसके प्रमुख स्तम्भ थे। यह मण्डल सनेही जी का समकालीन था। आज कानपुर में इसकी कोई परम्परा विकासमान नहीं है। इस काव्य-मण्डल की बैठक कानपुर के नयागंज चौराहे के निकट एक मकान में होती थी।[18] इसे 'भंड-मण्डल' भी कहा जाता था। इस मण्डल के समकालीन 'सनेही-मण्डल' को 'संड-मण्डल' कहा जाता था।

सनेही-मण्डल की निर्माण प्रक्रिया—सनेही जी के सम्मुख कानपुर के उपर्युक्त काव्य मण्डलों की साहित्यिक गतिविधियों का उदाहरण विद्यमान था। इन काव्य मण्डलों की विभिन्न साहित्यिक घटनाओं से सनेही जी अवगत भी थे। उन्होंने अपने समकालीन 'श्री हिन्दी साहित्य-मण्डल कानपुर' के अनेक कवियों का मार्ग दर्शन भी किया था। इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने भारतवर्ष एवं कानपुर के कवियों को अपनी पत्रिका सुकवि' (प्रका

शन का प्रारम्भ अप्रैल १९२८) और कवि सम्मेलनों के आयोजन द्वारा एक मंच पर एकत्रित करना प्रारम्भ किया। इसप्रकार उनके शिष्यों की एक बड़ी संख्या हो गयी और उन्होंने अपना एक पृथक् मण्डल निर्मित कर लिया, जिसे 'सनेही-मण्डल' कहा जाने लगा। इस मण्डल में कई प्रकार के कविगण थे। कुछ कवि ऐसे थे, जो सनेही जी की अध्यक्षता में आयोजित कवि सम्मेलनों में जाकर काव्य पाठ करते थे और कुछ ऐसे थे, जो कवि सम्मेलनों में न जाकर मात्र अपनी रचनायें 'सुकवि' में प्रकाशनार्थ प्रेषित करते थे। कभी-कभी 'सुकवि' के सदस्य भी कवि सम्मेलन में विशेष आग्रह वश चले जाते थे।

सनेही जी की साहित्यिक गतिविधि का क्षेत्र व्यापक एवं बहु आयामी था। उन्होंने वर्षों तक 'सुकवि' का संपादन किया, कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता की, विभिन्न साहित्यिक गोष्ठियों का संचालन किया और राजा-रजवाड़ों से भी अपना सम्पर्क बनाया। डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने सनेही-मण्डल के कवियों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है—

प्रथम वर्ग में वे कवि आते है, जो सनेही जी के साथ कवि सम्मेलनों की शोभा बढ़ाते थे और उसे जीवन्त बनाये रखते थे।

दूसरे वर्ग में ऐसे छोटे बड़े अनेक कवि आते हैं, जो सनेही जी को अपना काव्य गुरु मानकर, कवि-सम्मेलनों में उनके साथ जाते थे।

तीसरे वर्ग के कवि सनेही जी के साथ में राजा महाराजाओं के यहाँ जाते थे, जहाँ उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती थी।

चौथे वर्ग के कवि, कवि सम्मेलन से दूर रहकर काव्य सृजन करते हुए 'सुकवि' में अपनी रचनाओं को प्रकाशनार्थ भेजते थे। इस वर्ग में अनेक तालुक्केदार एवं एकान्त प्रिय कवि साधक कविगण आते हैं।

पाँचवें वर्ग में वे कवि आते हैं, जो 'सुकवि' को आर्थिक सहायता प्रदान करते थे तथा यश प्राप्ति हेतु अपनी रचनायें कभी 'सुकवि' में प्रकाशनार्थ प्रेषित करते थे।[19]

वस्तुतः डॉ० निशंक का यह विभाजन किसी अंश तक मान्य हो सकता है, परन्तु उनके विभाजन के आधार पर कौन सा कवि किस श्रेणी का है, इसका निर्णय कर पाना कठिन लगता है। क्योंकि सनेही-मण्डल के अधिकांश कवि ऐसे हैं, जिन्हें किसी वर्ग विशेष से सम्बद्ध करना सम्भव नहीं लगता। वे एकाधिक वर्गों में आ जाते हैं। वे अपना व्यक्तित्व इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें किसी वर्ग विशेष की सीमा में नहीं रखा जा सकता। मूलतः सभी वर्गों के कवि 'सनेही-मण्डल' के ही कवि स्वीकार किये जायेंगे। अपने

जीवन-काल में सनेही जी ने लगभग चार सौ कवि तैयार किये थे।[२०]

सनेही-मण्डल की संगठन-प्रक्रिया—

कवि सम्मेलनों का प्रचार—अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन सन् १९२३ में कानपुर में सम्पन्न हुआ था। इस अवसर पर लाठी मोहाल स्थित लक्ष्मणदास धर्मशाला में सनेही जी के संयोजकत्व में एक विराट अखिल भारतीय कवि सम्मेलन हुआ। तभी से सनेही जी की वाणी का स्वर भारतवर्ष के विभिन्न कवि सम्मेलनों में गूंजने लगा। कवि सम्मेलनों में संयोजक का कार्य सनेही जी भली-भाँति सम्पन्न करते थे और अपनी पत्रिका 'सुकवि' में कवि सम्मेलनों के विविध कार्यक्रमों को प्रकाशित करके उसका प्रचार भी करते थे। 'सुकवि' में कवि सम्मेलनों के समाचार प्रकाशित होते थे। 'सुकवि' में वे विविध कवि सम्मेलनों में भाग लेने वाले कवियों की काव्य रचनाओं की आलोचना करके उनका संशोधन करते थे। रचनाओं की आलोचना करने मे भी उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। कवि सम्मेलनों में सनेही जी के साथ उनके मण्डल के भी अधिकांश कवि जाते थे और वहाँ वे अपनी काव्य साधना के विकास के दुर्गम पथ पर चलकर अपना गन्तव्य प्राप्त करने की चेष्टा करते थे। वस्तुतः सनेही जी ने कवि सम्मेलनों के द्वारा मातृभाषा हिन्दी का महान उपकार किया। उन्होंने खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों ही काव्यधाराओं का परिष्कार करके अपने मण्डल के कवियों के काव्य-पथ को प्रशस्त किया।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन—

कवि—कवि सम्मेलनों के अतिरिक्त सनेही जी ने पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन द्वारा भी अपने मण्डल के निर्माण का उपक्रम किया। सनेही जी ने सर्वप्रथम गोरखपुर से सं० १९८१ माघ मास से एक मासिक पत्रिका 'कवि' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उन्होंने पहले उन्नाव और तत्पश्चात् कानपुर मे रहकर 'कवि' का संपादन किया। इस पत्र के माध्यम से सनेही जी ने हिन्दी प्रदेश के प्राचीन और नवीन कवियों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य सम्पन्न किया। यह मुख्यतः समस्यापूर्ति प्रधान पत्र था। इसका संपादन उन्होने 'त्रिशूल' उपनाम से किया था। इस पत्र के संपादन के द्वारा भी सनेही जी ने हिन्दी काव्य मर्मज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। यह पत्र १९२८ ई० से बन्द हो गया।

सुकवि—सन् १९२८ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरित होकर सनेही जी ने कानपुर में 'सुकवि-प्रेस' की स्थापना की और 'सुकवि' नामक

एक काव्य प्रधान पत्रिका का प्रथम अंक अप्रैल में प्रकाशित किया। इस पत्र का संपादन सनेही जी ने बाईस वर्ष तक किया। इसका प्रकाशन १९५१ ई० में बन्द हुआ। इस पत्र के माध्यम से सनेही जी ने अपने मण्डल के अधिकांश कवियों को तैयार किया। इस पत्र में वे कवियों को काव्य सुधार करने का निर्देश भी दिया करते थे। समस्यापूर्तियों के लिए उन्होंने अनेक कवियों को कई बार सूचित भी किया था कि समस्यापूर्ति रचना साधारण नहीं होती, उसके लिए महान प्रतिभा एवं अथक श्रम की आवश्यकता होती है। अतएव कवियों को समझ-बूझ कर अपनी रचना प्रकाशनार्थ प्रेषित करनी चाहिए। सनेही-मण्डल के अतिरिक्त इसमें अन्य कवियों की भी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। अत: 'सुकवि' में जिन कवियों की रचनाएँ प्रकाशित होती थी, वे सभी कवि 'सनेही-मण्डल' के नहीं थे। इन कवियों को 'सुकवि-मण्डल' का कवि अवश्य कहा जा सकता है। इसमें 'सनेही-मण्डल' से भिन्न भी कवि सम्मिलित थे, जो आर्थिक दृष्टि से मात्र 'सुकवि' से जुड़े रहना चाहते थे और जिनका 'सनेही-मण्डल' से कोई विशेष सम्बन्ध भी नहीं था। इस प्रकार 'सुकवि' के द्वारा सनेही जी ने अनेक कवियों का निर्माण किया।

सनेही-मण्डल की काल-सीमा– यह उल्लेखनीय है कि सनेही जी ने 'सुकवि' के सम्पादन के पूर्व से ही काव्य सृजन प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु उनके मण्डल के कवियों का परिचय 'सुकवि' के माध्यम से ही प्राप्त होता है। 'सुकवि' के पूर्व सनेही जी द्वारा संपदित 'कवि' के प्रकाशन काल तक भी सनेही-मण्डल के कवियों का कोई स्पष्ट परिचय नहीं प्राप्त हो पाता। 'सुकवि' के प्रकाशनावधि को ही 'सनेही-मण्डल' की काल-सीमा के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। 'सुकवि' के प्रकाशन की समाप्ति तक उनके मण्डल के लगभग सभी कवि हिन्दी जगत में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। अतएव सन् १९२८ से १९५१ तक की सीमा को 'सनेही-मण्डल' की काल-सीमा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।

सनेही-मण्डल के कवि– स्वयं सनेही जी के अनुसार उन्होंने लगभग चार सौ कवि तैयार किये थे।[21] परन्तु इन सभी कवियों की नामावली प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। सनेही-मण्डल के कवियों के वर्गीकरण के आधार पर यहाँ कुछ कवियों की नामावली प्रस्तुत की जा रही है–

१–**सनेही के समकालीन कवि–** इस वर्ग के कवियों में निम्नलिखित कवियों के नाम मिलते हैं– राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा,' रत्नेश (जालौन) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (आजमगढ़ दास रत्नाकर' काशी देवीप्रसाद पूर्ण (कानपुर द्विजश्याम बाराबकी)

वचनेश मिश्र (फर्रुखाबाद), शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' (रायबरेली) श्यामबिहारी शर्मा (कानपुर), रूपनारायण पाण्डेय (लखनऊ), मैथिली शरण गुप्त (झांसी), रामनरेश त्रिपाठी (जौनपुर), द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' (जालौन), लोचनप्रसाद पाण्डेय (बिलासपुर), हरदयाल सिंह, (महमूदाबाद) भगवानदीन 'दीन' (काशी), माखनलाल चतुर्वेदी (खण्डवा), वियोगीहरि (बुन्देलखण्ड), ब्रजभूषण त्रिपाठी 'ब्रजेश' (सीतापुर), राजा गंगा प्रतापसिंह (सीतापुर), चक्रधर अवस्थी 'चक्र' (सीतापुर), केदारनाथ त्रिपाठी 'नवीन' सीतापुर) और भानुप्रताप सिंह 'भानु' (भिंड)।

२–दीक्षित कवि– दीक्षित कवियों से आशय यहाँ पर सनेही जी का शिष्यत्व ग्रहण करने वाले कवियों से है। इन कवियों के नाम इस प्रकार हैं– अनूप शर्मा (सीतापुर), जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (कानपुर), शिवदुलारे शर्मा 'शिव' (कानपुर), पं० देवीदयाल शुक्ल 'प्रणयेश' (कानपुर), असीम दीक्षित (कानपुर), श्यामलाल शुक्ल 'चकोर' (सीतापुर), नत्थाराम दीक्षित 'मिलिन्द' (उन्नाव), श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' (कानपुर), रामदेव सिंह 'कलाधर' (बस्ती), किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' (कानपुर), रसराजनागर (काशी), श्री प्रभुदयाल शर्मा 'अभिराम' (कानपुर), सेवकेन्द्र त्रिपाठी (झाँसी) और राजेन्द्र सिंह 'सुधाकर' (झालावाड़)।

३–सनेही से प्रभावित कवि– इस वर्ग के कवियों के नाम इस प्रकार है– हरिनारायण हरि जू (कानपुर), उमादत्त सारस्वत (सीतापुर), गिरिजा दयाल 'गिरीश' (लखनऊ), हरिनन्दन वाजपेयी 'हर्ष' (कानपुर), डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' (लखनऊ), कमलेश (कानपुर), राजा अजय-वर्मा 'कृष्ण' (शाहजहाँपुर), शिशुपाल सिंह 'शिशु' (इटावा), प्रसिद्धनारायण गौड़ (सीतापुर), बलदेवप्रसाद मिश्र 'राजहंस' (अयोध्या), अवधेश मालवीय (कानपुर), अखिलेश त्रिवेदी (सीतापुर), रामजी दास 'कपूर' (सीतापुर), अम्बिकेश (कानपुर) और कुमुदेश वाजपेयी (कानपुर)।

४–सनेही परम्परा को जीवित रखने वाले आज के कवि– सुमन दुबे (कानपुर), विशम्भर दयाल शुक्ल 'ललाम' (कानपुर), अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' (हरदोई), प्रतीक मिश्र (कानपुर) और सिद्धनाथ मिश्र (कानपुर)।

लेकिन सनेही-मण्डल और सनेही जी से सम्बन्धित कवियों की उपर्युक्त नामावली के सम्बन्ध में समुचित प्रमाण के अभाव मे यह भी निश्चित करना कठिन है कि कौन सा कवि सनेही जी से दीक्षित है और कौन सा प्रभावित ? इन कवियों में से अनेक कवियों की कोई काव्य रचना भी प्रकाशित नहीं है, जिससे उनके काव्य का बोध कराया जा सके। इस कठिनाई को

ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ में सनेही-मण्डल के केवल उन्हीं कवियो की काव्य प्रवृत्ति का विवेचन किया गया है जो 'सनेही-मण्डल' के प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं तथा जिनकी काव्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। ऐसे कवियों की नामावली इस प्रकार है–

१– पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
२– जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'
३– पं० अनूप शर्मा
४– हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'
५– प्रभूदयाल शर्मा 'अभिराम'
६– पं० देवी दयाल शुक्ल 'प्रणयेश'
७– श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'
८– किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर'
९– वचनेश मिश्र
१०– शिशुपाल सिंह 'शिशु'
११– द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'
१२– डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

सनेही-मण्डल के कवियों का काव्य-चिन्तन–'सनेही-मण्डल' के कवियों के काव्यदर्शों के सन्दर्भ में सनेही जी के काव्यादर्शों को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान देना अपरिहार्य है। क्योंकि उनके काव्य सिद्धान्तों से उनके मण्डल के अधिकांश कवि प्रभावित दृष्टिगत होते हैं। कुछ विशिष्ट कवियों की अपनी मौलिक स्थापनाएँ भी मिलतीं हैं, परन्तु सनेही जी का काव्य-चिन्तन उसे कहीं न कहीं संस्पर्श किये हुए है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सनेही-मण्डल के कवियों के काव्यादर्शों पर भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलों के कवियों के काव्यादर्शों का प्रभाव परिलक्षित होता है। परन्तु सनेही जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा अपने काव्यादर्श प्रस्तुत करके अपने अनुगामी कवियो की काव्य रचनाओं द्वारा एक विशिष्ट 'काव्य-मण्डल' को संगठित करने का श्रेय प्राप्त किया।

काव्य का स्वरूप– सनेही जी ने अपनी रचनाओं में काव्य की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं दी। पत्र पत्रिकाओं में विकीर्ण उनके विचारों एवं भाषणों के माध्यम से ही उनकी काव्य विषयक धारणा का परिचय अवश्य प्राप्त होता है। सनेही जी की धारणा थी कि अनुभूति ही काव्य का प्राण-तत्त्व है। अनुभूति का [illegible] क अभिव्यंजन ही कविता है काव्य में हृदय तत्त्व का संयोजन [illegible] है सनेही जी कहते हैं कविता [illegible]

से निकल कर हृदय तक पहुँचती है।......एक सुन्दर मानव शरीर को एक सर्जन जिस दृष्टि से देखता है, एक कवि की दृष्टि उससे भिन्न होती है। कवि तो उसके लावण्य, माधुर्य और उसके भावभंगी में ही रसानुभूति करता है, जब कि एक चतुर शास्त्र चिकित्सक का ध्यान उसके रागपट्टों इत्यादि पर आकृष्ट होता है।"[22] एक स्थल पर वे कहते हैं– "कविता का सम्बन्ध हृदय से है और उसकी तोल बुद्धि के तराजू पर नहीं हो सकती।[23]" इस प्रकार सनेही जी काव्य का उद्गम हृदय से स्वीकार करते हैं और उसमें बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा हृदय तत्त्व के योगदान को विशेष महत्त्वपूर्ण मानते हैं। काव्य की रचना आवेशात्मक क्षणों में नहीं हो सकती और न ही बुद्धि के संयोग के बिना ही। जो कवि बिना इसका ध्यान दिये ही काव्य सृजन करता है, उसकी भर्त्सना सनेही जी के शब्दों में इस प्रकार है– "इस बिना विचार की सीमा छन्दों नियम, व्याकरण नियम के उल्लंघन तक ही परिमित नहीं है, वह अर्थ अनर्थ के विचार तक आ पहुँचती है। ऐसी रचना करने वालों की कृतियों में यदि अर्थ हीन पंक्तियाँ मिलें तो आश्चर्य ही क्या ?"[24]

वस्तुतः सनेही जी ने काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में अपना कोई निश्चित मत नहीं व्यक्त किया, फिर भी वे काव्य का सम्बन्ध प्रमुखतः हृदयगत उद्गारों से जोड़ते हैं, जिसमें स्थिरात्मक बुद्धि के समायोजन की अनिवार्यता अपरिहार्य है। काव्य का मुख्य तत्त्व वे अनुभूति को ही स्वीकार करते हैं।

पं० अनूप शर्मा ने सनेही जी की अपेक्षा काव्य की परिभाषा एवं काव्य के स्वरूप पर व्यापक स्तर पर विचार किया। काव्य की परिभाषा देते हुए अनूप शर्मा ने काव्य को मानव हृदय के गूढ़तम स्रोत से प्रादुर्भूत भावों का आरोह अवरोह स्वीकार किया है। उनका मत है–"काव्य शब्दों का अथवा भावों का, एक विशेष आरोहावरोह संगति, संक्रम या तारतम्य है, जो मानव हृदय के किसी गूढ़ अन्तस्तल से उत्पन्न होता है।"[25] एक स्थल पर वे काव्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं– "सार्वदेशीय भावों से युक्त मानव जीवन की झलक का नाम कविता है।"[26] इस परिभाषा में अनूप जी ने काव्य मे मानव जीवन के सर्वांग भावों की छवि का प्रतिच्छायित होना आवश्यक माना है। वे काव्य में सौन्दर्य तत्व का होना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि सौन्दर्य पक्ष में सत्य एवं शिव का समावेश भी रहता है। इस सन्दर्भ मे उनका विचार इस प्रकार है– "कविता 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की समष्टि है, क्योंकि यदि सत्यता न हो तो आलंकारिता नहीं आयेगी और कल्याण कारिता न होगी तो कवियों को अन्य सांसारिक सफलता प्रायः प्राप्त न होने पर भी उन्हें सद्य परिनिर्वृत्तये' का पाठ कौन पढ़ायेगा"[27] इस प्रकार

पं० अनूप शर्मा ने काव्य में सत्य शिव और सुन्दर तीनों तत्वों का समावेश आवश्यक माना है। काव्य से ही विश्व के समस्त सौन्दर्य उद्भूत होते हैं, जिससे मानव जीवन सुसंगठित रूप से कार्यान्वित होकर समष्टि का हित साधन करता है। यथा– "संसार के समस्त सौन्दर्य उससे निःसृत होते हैं, उन्हींके अनुसार मानव जीवन संचालित होता है, वही समाज का कल्याण-कारी अंग है।"[28] अनूप शर्मा ने काव्य को मात्र पद्य एवं शब्दार्थों तक ही सीमित न मानकर गद्य, स्वरों में अभिव्यक्ति एवं वास्तु एवं स्थापत्य दृश्यो से प्रेरित हृदयोद्‌गारों को भी स्वीकार किया और काव्य को विज्ञान से पृथक् घोषित करते हुए काव्य का सम्बन्ध भाव से एवं विज्ञान का सम्बन्ध विचार तत्त्व से सम्पृक्त किया है। यथा– "कविता एक ऐसी शक्ति है, जो केवल शब्दार्थों में नहीं वरन् रूपों में भी वर्तमान रहती है और जो नाद के अतिरिक्त उन दृश्यों से भी अपना दृश्य दिखलाने के लिए फूट पड़ती है, जो वास्तु एवं स्थापत्य द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं।...... । कविता विज्ञान नहीं है, क्योंकि कविता का क्षेत्र भाव है और सहचारी श्रद्धा है, जब कि विज्ञान की क्रीड़ा विचार पर निर्भर है।"[29]

पं० अनूप शर्मा ने कवि के स्वरूप पर विचार करते हुए कवि कर्म का समुचित निर्धारण भी किया। उनकी दृष्टि में कवि की अनुभूति शक्ति सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है, जिससे वह रागात्मक तत्वो पर सूक्ष्म दृष्टि का निक्षेप कर उदार आत्म वृत्ति से उन्हें स्पर्श कराते हुए वाणी प्रदान करता है। उसकी वाणी में मानव जगत की समस्त परिदृश्या-वालियाँ अदृश्य या दृश्य रूप में प्रतिध्वनित हो जाती हैं तथा अप्रत्यक्ष दृश्य भी प्रत्यक्ष दृश्य के समान मुखरित हो जाते हैं। इस सन्दर्भ में उनका मत इस प्रकार है– "कवि में भावना शक्ति अन्य मनुष्यों से अधिक तीव्र होती है, उसका उत्साह और जीवन के प्रति भाव अधिक उत्तेजित होता है, उसकी आत्मा अधिक उदार और विस्तृत होती है। ..... । वह अपनी रागात्मिका वृत्तियों मे मग्न रहता है, जीवन के विविध अंगों पर वह दृष्टि डालता है, संसार की गति में जो मानव प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है, उनको वह वाणी देता है और जो अदृश्य रहती हैं, उसको प्रकाश में लाता है।"[30] कवि की दृष्टि एव हृदय कोश इतना सम्पन्न होता है कि वह समस्त भूतों के भावों को निज हृदयस्थ अनुभूत किये रहता है। इसीलिए अनूप शर्मा ने कवि के हृदय को 'सर्व भूत-हृदय' की संज्ञा दी है।[31] अनूप जी की दृष्टि में कवि का प्रमुख कर्म यह है कि कवि समस्त मानव के हृदयस्थ भावों को इस प्रकार वाणी दे कि वह सहज सर्व संवेद्य बन जाय, क्योंकि उसकी अनुभूति एव

अभिव्यंजना कौशल सामान्य मानव से उच्च स्तरीय होती है।

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' भी काव्य के स्वरूप पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं– "जब हम अपने आप को, अपने भीतरी स्वरूप को जगत के अन्तर्द्वन्द्व के साथ मिलाकर देखते हैं, तभी हमारे हृदय में मधुर पुलक स्पन्दन होता है और इसी स्पन्द द्वारा हमारे प्राणों के तार जिन मधुर स्वरों में गूंज उठते हैं, उसी गूंज का नाम कविता है।"[32] इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि "हृदय का द्रव ही तो काव्य है।"[33] एक अन्य स्थल पर उनकी मान्यता है– "कविता जीवन का सत्य और स्वाभाविक रूप है, जो स्वयं पूर्ण एवं नित्य है। जीवन की वास्तविकता से दूर हटकर अपूर्ण और अस्वाभाविक चित्र को हम कविता मानने को तैयार नहीं। असाधारणता और अलौकिकता में चमत्कार भले ही हो, किन्तु कविता नहीं होती।"[34] इन सभी परिभाषाओं से यह ध्वनित होता है कि 'हृदयेश' जी के अनुसार काव्य का सम्बन्ध यथार्थ जीवन से है। वह मानव के अन्तस्थल से– समुद्भूत एवं मधुर अन्तर्द्वन्द्वों से सम्पृक्त होकर विकसित एवं प्रस्फुटित होता है। उनकी दृष्टि में काव्य हृदय का मधुर पुलकन है, जिसमें जीवन की यथार्थ अनुभूतियाँ संसक्त रहती हैं। कांव्यास्वाद से पाठक को ऐसा रसलोक प्राप्त होता है, जो अगाध सौन्दर्य, निर्द्वन्द्व सुख एवं सुखद सुकोमल भावों से आप्लावित है। विश्व के रहस्यात्मक सौन्दर्य का समुद्घाटन काव्य के द्वारा ही होता है। काव्यास्वाद का सुख लौकिक धरातल से विलक्षण एवं उच्च होता है। इस सम्बन्ध में हृदयेश जी कहते हैं– "कविता कलेजे की सबसे सुमधुर गुप्त रागिनी है. वह हमें क्षण भर के लिए इस द्वन्द्वमय संसार से बहुत ऊपर उठाकर, एक दूसरी ही दुनियाँ में पहुँचा देती है, जहाँ केवल अगाध मस्ती है, अनन्त सौन्दर्य है, निराली निर्द्वन्द्वता है और है अठखेलियाँ करती हुई कोमल अनुभूतियों का सुखद समूह।"[35] वे काव्य के स्वरूप निर्धारण में आत्मा को सर्वोपरि स्थान प्रदान करते हैं। उनकी दृष्टि में लोक-काव्य और नागर-काव्य दोनों में 'आत्मा' की छवि दिखाई पड़नी चाहिए, क्योंकि मानवीय अन्तर्जगत का सम्बन्ध आत्म तत्त्व से है, जहाँ से काव्य की निर्झरणी का स्रोत निःसृत होता है। यथा– "बात यह है कि चाहे ग्रामीण कविता हो, चाहे नागरिक कविता, हम दोनों में ही उतराती हुई आत्मा देखना चाहते हैं। जिस कविता में आत्मा नहीं वह सजीव कदापि नहीं कही जा सकती।"[36]

कवि कर्म के सम्बन्ध में भी 'हृदयेश' ने यह विचार व्यक्त किया है कि यथार्थ जीवनानुभूति का पाठक जब काव्य के द्वारा साधारणीकरण कर सके

तभी कवि की सफलता है। यथा– "जब मनुष्य अपने जीवन की वास्तविक अनुभूति कविता के भीतर देख सकेगा, तभी कवि-कर्म सार्थक होगा।"[37]

अभिराम शर्मा ने काव्य की परिभाषा एवं उसके स्वरूप का विवेचन न कर कवि को कविता का साधक कहा है।[38]

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' ने काव्य की परिभाषा एवं काव्य के स्वरूप पर विचार न व्यक्त करके, यह संकेत किया है कि काव्य सृजन से मैं तृप्त नहीं हो पाता हूँ। अनूभूतियों को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त कर देने पर भी अतृप्तावस्था बनी रहती है।[39]

प्रणयेश शुक्ल ने काव्य की परिभाषा न देकर कवि कर्म को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार कवि को भावों के महासागर का संतरण करना पड़ता है। इस संतरण के पश्चात् ही वह नूतन अनन्त हृदयोद्‌गार उद्‌गारित कर सकता है। वह मानस का ऐसा चित्रण करता है, जहाँ विश्व का विराट हृदय, असीम-ससीम एवं साकार-निराकार दोनों एकीकृत हो जाते हैं–

> "कवि ! भावों की महापरिधि तुझको करनी है पार।
> और उदगारित करने हैं अभिनव अनन्त उद्‌गार।
> मानस चित्रण कर दिखला दे जग का हृदय विराट।
> जहाँ असीम ससीम एक हों निराकार - साकार।"[40]

डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने कवि कर्म पर पर्याप्त विचार किया है। उनकी धारणा है कवि को यथार्थ का अंकन करना चाहिए, कल्पना का नहीं। क्योंकि कल्पना में प्राय: अनुभूतियाँ असम्पृक्त रह जाती हैं और काव्य मात्र चमत्कार की वस्तु होकर रह जाता है– "कवि की संवेदनशील दृष्टि जहाँ ठहरती है वे उसी का चित्रण करते हैं। इसमें यथार्थ का अंकन रहता है, कल्पना का नहीं।"[41] कवि को कवित्व चेतना से पूर्ण एवं साधनाशील भी होना चाहिए। इससे उसकी प्रतिभा अहर्निशि तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। यथा– "जब तक कवि में कवित्व की चेतना नहीं होती, तब तक वह अच्छी कविता नहीं कर सकता। ··· । वह जितना ही साधनालीन होता है, उसकी अनुभूति उतनी ही तीव्र होती जाती है और उसकी प्रतिभा को प्रखर कर देती है।"[42]

काव्य की आत्मा– काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के आचार्य कवि सनेही जी ने अपने संतुलित विचार व्यक्त करते हुए रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। यथा– "वास्तव में कविता के लिए रस वैसा ही आवश्यक है, जैसा मानव शरीर में रुधिर।"[43] काव्य के विभिन्न रसों में पूर्ववर्ती आचार्यों के समान सनेही जी ने भी श्रृंगार रस को

शीर्ष स्थान प्रदान किया। उनकी धारणा है कि पूर्ववर्ती समस्त कवियों ने शृंगार रस को श्रेष्ठ घोषित कर उसकी महत्ता स्वीकार की है। यथा– "शृंगार रस की व्यापकता और प्रमुखता इतनी प्रत्यक्ष है कि अब उसके प्रमाण की आवश्यकता नहीं। कविता के इतिहास में जिन कवियों का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा है, उनमें से अधिकांश इसके बन्दे और प्रेम के चेरे नजर आते हैं।"[44]

काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में पं० अनूप शर्मा ने जहाँ परम्परा का पालन किया, वहीं अपना मौलिक सिद्धान्त भी प्रस्तुत किया। पूर्ववर्ती परम्परा से पृथक् उनकी मान्यता है कि काव्य में वर्णित अदृश्य चित्र एवं अश्रुत नाद भी काव्य की आत्मा है, क्योंकि अश्रुत संगीत एवं अदृश्य चित्रण भी काव्य पाठकों को आनन्द सिन्धु में निमज्जित करते हैं। वे कहते हैं– "काव्य चित्र का अदृश्य भाग भी दर्शकों को हृदयंगम हो सकता है और बिना गायन वादन की क्रिया के भी काव्य के संगीत का आनन्द श्रोताओं को आन्दोलित कर सकता है और यही दृश्य-चित्रण एवं अश्रुत संगीत काव्य की आत्मा है।"[45] इसके अतिरिक्त अनूप शर्मा ने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा उपदिष्ट रस को अप्रत्यक्ष रूप में काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में जब हृदय का भाव रस से संयोग पाकर तीव्रगति से प्रवाहित होता है, तभी यथार्थतः काव्य सृजन हो पाता है। यथा– "सच्चे कवि की पहचान उसके विचारों से नहीं की जाती, परन्तु जब उसके भाव रस से परिपुष्ट होकर अप्रतिहत गति से प्रवाहित होते हैं, तभी वह सच्चा कवि कहा जाता है।"[46]

सनेही-मण्डल के अन्य कवियों में वचनेश मिश्र ने पूर्ववर्ती परम्परा से भिन्न रस विषयक काव्यात्मा के सन्दर्भ में वात्सल्य रस को रसराज माना। आचार्य विश्वनाथ के द्वारा वात्सल्य रस की श्रेष्ठता अवश्य प्रतिपादित की जा चुकी थी, परन्तु उसे रसराज के रूप में स्वीकार नहीं किया गया था। आचार्य वचनेश मिश्र ने अपनी मौलिक स्थापना हेतु यह तर्क दिया– "शृंगार आदि सभी रसों पर अवस्थानुसार अन्यान्य रस भी अधिकार कर बैठते हैं, किन्तु वात्सल्य रस पर किसी भी अवस्था में कोई अन्य रस अधिकार नहीं कर सकता।"[47] उनकी यह धारणा समीचीन नहीं कही जा सकती, क्योंकि शृंगार रस की शाश्वतता, सार्वजनीनता, व्यापकता एवं सार्वभौमिकता अन्य रसों की अपेक्षा अधिक सबल है, अतः वात्सल्य रस को रसराज की संज्ञा देना तर्क संगत नहीं प्रतीत होता।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त सनेही-मण्डल के अन्य कवियों के काव्य

की आत्मा के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार नहीं मिलते ।

काव्य-हेतु– काव्य-हेतु के सम्बन्ध में सनेही जी ने काव्य का मूल हेतु प्रतिभा को स्वीकार किया। प्रतिभा से उनका तात्पर्य दैवी शक्ति अथवा दैवी कृपा से न होकर उस क्षमता से है जो अभ्यास एवं परिश्रम से उपलब्ध हो सके। सनेही जी के असंख्य शिष्यों एवं कवियों ने अपने विषय में यह धारणा व्यक्त की कि यदि आचार्य सनेही का उन्हें प्रोत्साहन एवं मार्ग दर्शन न प्राप्त होता तो वे कवि बन ही नहीं सकते थे। सनेही जी के शिष्यों एवं कवियों का यह विचार सनेही जी की काव्य-हेतु विषयक धारणा का स्पष्टीकरण करता है, जिसमें प्रतिमा मूल रूप से छिपी हुई है। इसके अतिरिक्त सनेही जी ने उत्पाद्या प्रतिभा के द्वारा काव्य सृजन की ओर संकेत करते हुए कहा है– "कविता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि प्राचीन सुकवियों की उक्तियों का मनन किया जाय। उनके मनन करने के लिए यह अनिवार्य है कि काव्यशास्त्र की परिभाषाओं और रस अलंकारादि का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जाय।"[48] इससे यह स्पष्ट होता है कि सनेही जी पूर्व आचार्यों द्वारा अर्जित काव्यशास्त्र का ज्ञान कवि के लिए आवश्यक मानकर उसे काव्य-हेतु के रूप में स्वीकार करते हैं। काव्य-हेतु के सन्दर्भ में उनकी कवि सम्मेलन विषयक धारणा पर भी ध्यान देना अपेक्षित है, जो उनकी मौलिक प्रतिभा की उपज है। कवि सम्मेलनों के प्रचार को काव्य-हेतु के रूप में मान्यता देते हुए सनेही जी कहते हैं– "आवश्यकता है कवि सम्मेलनों के सुधार और कवियों के एक सुदृढ़ संगठन की, जो कवियों को प्रोत्साहन दे और कवि सम्मेलनों के संयत तथा नियमपूर्वक करने का प्रबन्ध करें।"[49]

पं० अनुप शर्मा ने सनेही जी का अनुसरण करते हुए उत्पाद्या प्रतिभा को काव्य-हेतु के रूप में स्वीकार कर पूर्ववर्ती कवियों के काव्य के अध्ययन को काव्य-कारण के रूप में समर्थन दिया है। 'सिद्धार्थ' महाकाव्य की भूमिका में वे स्वीकार करते हैं– "अन्त में मैं उन सभी पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों का कृतज्ञ हूँ जिनके ग्रन्थों को पढ़कर मेरी प्रतिभा उद्दीप्त हुई और जिनके ग्रन्थों से मैंने पूरा-पूरा लाभ उठाया है।"[50]

सनेही जी का अनुगमन करते हुए प्रणयेश शुक्ल ने भी प्रतिभा को काव्य-हेतु स्वीकार किया। उनकी धारणा है कि कवि निज प्रतिभा द्वारा ही काव्य में सरसता का संचार कर सकता है। यहाँ प्रतिभा का आशय अभ्यास से ही है। यथा– 'जहाँ तक नीति और उपदेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक सरसता लाना अत्यन्त दुष्कर है। फिर भी यत्र-तत्र जो सरसता

उनमें मिल जाती है उससे कवि की प्रतिभा गौरवान्वित होकर ही रहती है।"[51] प्रणयेश शुक्ल ने पूर्व संस्कारों को भी सहजा प्रतिभा के रूप में मान्यता देते हुए उसे भी काव्य-हेतु स्वीकार किया। महाकवि रंगपाल के काव्य का विवेचन करते हुए वे कहते हैं-"जैसा कि स्पष्ट है कि माता-पिता का प्रभाव बालक पर शीघ्रातिशीघ्र पड़ता है, उसी भाँति महाकवि रंगपाल जी पर अपने पूर्व संस्कारों के साथ ही साथ माता और पिता का भी पूर्ण प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि आपकी काव्यानुभूति बाल्यावस्था से ही चिरसंगिनी बन गई।"[52] काव्य-हेतु के सन्दर्भ में उन्होंने विभिन्न विचार व्यक्त करते हुए आर्थिक सम्पन्नता, कवियों का सम्पर्क, स्वभाव की सुकोमलता, वंश परम्परागत प्राप्त कवित्व शक्ति आदि की ओर भी अपना ध्यान आकृष्ट किया है।"[53]

काव्य-प्रयोजन–काव्य-प्रयोजन के सम्बन्ध में यद्यपि सनेही जी ने स्पष्ट विचार नहीं व्यक्त किये तथापि उनकी काव्य-रचनाओं के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे काव्य द्वारा मात्र जनमानस को आनन्द सिन्धु में निमज्जित नहीं करना चाहते, प्रत्युत समाजोत्थान, राष्ट्रहित, सदाचार एवं परोपकार की भी शिक्षा देना उन्हें अभीष्ट था।

पं० अनूप शर्मा ने काव्य-प्रयोजन का व्यापक विवेचन करते हुए काव्य का मुख्य प्रयोजन हृदय को सुसंस्कृत तथा मानव जीवन को आनन्दमय एवं शान्तिपूर्ण बनाना स्वीकार किया है। उनका कथन है-"कविता का धर्म आनन्द देकर हृदय को सुसंस्कृत और उत्तेजित करना है।—... अन्य ललित कलाओं के समान कविता का चरम उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है और इस संसार में मनुष्य जीवन को किस प्रकार सुखी बनाया जाय, इस समस्या को सुलझाना है।"[54] अनूप शर्मा की दृष्टि में काव्य का मुख्य प्रयोजन मानव हृदय को परिष्कृत कर उसमें सार्वभौमिक एवं उदात्त भावनाओं का समावेश करना, नैतिक पक्ष को अक्षुण्ण रखना, चरित्र एवं मस्तिष्क को स्वस्थ बनाना, आनन्द एवं सौन्दर्य का मानव जीवन में संचार करना है, जो उनके विशाल एवं उदार हृदय का परिचायक है।

काव्य के अन्य प्रयोजनों में अनूप शर्मा ने काव्य के द्वारा संसार की समस्त वस्तुओं को सौंदर्यमण्डित एवं जीवन के विषाक्त वातावरण को अमृत तुल्य स्वस्थ वातावरण में परिवर्तन करने की क्रिया को भी काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में उनका कथन इस प्रकार है-"कविता लोकोत्तर सौन्दर्य से कल्पना को विभूषित ही नहीं करती, वरन् संसार के दुःखों से निवृत्ति देकर एक भावना बन जाती है जीवन की नैतिकता को

व्यक्त करती है और ऐसे सत्य एवं पवित्र जीवन की ओर आकर्षित करती है, जो व्यावहारिक जीवन का आदर्श है।"[55]

वस्तुतः अनूप शर्मा की दृष्टि में काव्य का मुख्य प्रयोजन मानव जीवन को नैतिकता, आनन्द, सौन्दर्य एवं शुचिता से परिपूर्ण बनाना है। उनकी इस धारणा में पूर्ववर्ती आचार्यों के आदेश का पालन एवं आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दोनों का समन्वयात्मक आदर्श समाविष्ट है।

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' ने काव्य प्रयोजनों के अन्तर्गत देश की संस्कृति का उत्थान एवं मानव के तापित जीवन में शान्ति के आगमन पर विशेष बल दिया। उनका मत है-"देश के सांस्कृतिक विकास में कविता तथा अन्य ललित कलाओं के प्रभाव से पर्याप्त सहायता पहुँचती रहती है। ········। कविता के एक चरण मात्र से असंख्य प्राणियों के प्राणों ने त्राण पाया।"[56] एक स्थल पर वे काव्य का प्रयोजन मानवता के आध्यात्मिक माधुर्य एवं छवि को प्रकाशित करना भी स्वीकार करते हैं। यथा-"सभी युगों और कालों में कविता का लक्ष्य मनुष्यता के आध्यात्मिक सौन्दर्य को विकसित करना रहा है और रहेगा।"[57] इसके विपरीत हृदयेश जी ने मौलिक दृष्टि प्रदान करते हुए मातृभाषा की सेवा एवं भाषा के प्रचार को भी गौण काव्य प्रयोजनों के रूप में स्वीकार किया है।[58] उन्होंने उपदेश मात्र को काव्य प्रयोजन के रूप में अस्वीकार किया है, क्योंकि कवि एक कलाकार होता है न कि उपदेश प्रचारक। यदि वह उपदेशक बनने का प्रयत्न करता है, तो काव्य में सरसता एवं सौन्दर्य का ह्रास होने लगता है। यथा-"कुछ लोगों का विचार है कि कविता में उपदेश अवश्य होना चाहिए। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि कवि पहले कलाकार है और उपदेशक बाद को। कलाकार का उद्देश्य सौन्दर्य विकास है, न कि उपदेश-प्रचार। कवि में या उपन्यास लेखक में जहाँ उपदेष्टा बनने का भाव जागृत हुआ, वहीं उसकी रचना में रोचकता का ह्रास हो जाता है और कला सौन्दर्य विहीन हो जाती है।"[59]

काव्य के वर्ण्य-विषय–सनेही जी ने यद्यपि काव्य के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में अपना स्पष्ट मत व्यक्त नहीं किया, तथापि उनके काव्य विषय की व्यापकता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्हें पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों के प्रायः सभी वर्ण्य-विषय मान्य थे। उनका कथन है-"अगर गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस में वर्णित रावणशाही को मुगलकालीन शासन का प्रतिबिम्ब समझा जाय जैसा कि कई आलोचकों की सम्मति है, या उसकी कुछ पंक्तियाँ आजकल अनुपयुक्त हैं, तो क्या हम उसे

भी कोर्स से निकालने को तैयार हो जायेंगे ?"[60] पं० अनूपशर्मा की दृष्टि मे काव्य का वर्ण्य-विषय संसार की सभी वस्तुएँ हो सकती हैं। यथा—"एक महाकवि अपनी सारी भाव सम्पत्ति संसार से इकट्ठा करता है।"[61]

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' ने दैनिक जीवन की घटनाओं और मानव के समस्त रागात्मक भावों, जिसमें दुखात्मक भाव भी समाहित हैं, को काव्य का वर्ण्य-विषय स्वीकार किया। ये सभी भाव शाश्वत एवं मानव जीवन में सनातन रूप से प्रवाहित हैं। वे कहते हैं—"जीवन के द्वन्द्व-क्षोभ, सुख-दुःख, आशा-निराशा, तृष्णा-तृप्ति, घृणा-आसक्ति, रोष-दया, क्षमा और स्नेह प्रभृति मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों का रूप नित्य है, सनातन है। कविता मे उन्हीं के चमत्कारिक चित्रण को पढ़कर हमारी रागात्मक वृत्तियों का सम्बन्ध सजीव हो जाता है।"[62]

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर वेदना एवं मानव की अकिंचनता, दैन्यता एवं निराशात्मक भावों के चित्रण को काव्य का वर्ण्य-विषय स्वीकार किया।[63]

काव्य-शिल्प— भाषा—भाषा के सम्बन्ध में सनेही जी के स्फुट विचार 'सुकवि' में बिखरे पड़े हैं। उनके अनुसार भाव कविता का मुख्य अंग है, परन्तु भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। अतएव भाषा का स्वस्थ रूप काव्य में प्रयुक्त होना चाहिए। यथा—"जैसे एक निर्बल शरीर में स्वस्थ मन का निवास असम्भव है, वैसे ही गलत-सलत भाषा में लिखा हुआ उत्तम काव्य भी अलभ्य है।"[64] स्पष्ट है कि वे व्याकरणानुभूति, सुव्यवस्थित एवं संयत भाषा के प्रयोग के पक्षधर थे—"आशा है, सुकवि शुद्ध एवं मुहावरों द्वारा भाषा में रचनाएँ करने का उद्योग करेंगे और शिथिल भाषा से प्रतिभा का दुरुपयोग न करेंगे।"[65] इसीप्रकार मुहावरों से युक्त भाषा प्रयोग के प्रति वे कहते हैं—"हिन्दी कवियों को एक मत होकर मुहावरेदार बोलचाल की हिन्दी को अपनी कविता की भाषा का आदर्श बनाना चाहिए।"[66] सनेही जी शुद्ध शब्दों के प्रयोग पर बल देते हुए, उसके विकृत रूप के समर्थक कभी नहीं बने। यथा—"शब्दों की तोड़-मरोड़ से काव्य शरीर को विकृत न होने देना चाहिए।"[67]

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' भी सनेही जी का अनुसरण करते हुए सहज भाषा, जो स्वाभाविक जन जीवन के भावों की संवाहक हो एवं जिसके अन्तःपक्ष में सरसता, मधुरता एवं सजीवता हो, के पक्षधर रहे। उनकी दृष्टि में जो शब्द परम्परा से गृहीत हों, परन्तु यदि वे वातावरण एवं युगीन परिवेश और विचारों को वहन करने में असमर्थ हों, तो वे त्याज्य है—"मुझे

इस प्रकार के जनसाधारण के युगों की भाषा के शब्द जैसे सर्वस्व के स्थान पर 'सब कुछ' और 'आर्द्र अश्रु' के स्थान पर 'गीले आँसू' बहुत प्यारे लगते हैं। .... । कुशल शब्द शिल्पी उपयुक्त सानुकूल शब्दों को यथास्थान स्थापित करके भाषा की गति में लोच, प्रवाह में स्फूर्ति और उसके अन्तराल में माधुर्य का खजाना भर देता है।"[68]

सनेही-मण्डल के अन्य कवियों में अभिराम शर्मा ने भाषा के सुगठित, व्याकरणानुमोदित, प्रसादादि गुणों से युक्त रूप का समर्थन किया है। वे कहते हैं–"हिन्दी भाषा का स्वरूप एक बनाकर, व्याकरण के नियमित आधार पर प्रसादादि गुणों को लेकर जिस नवीन सत्साहित्य का निर्माण हुआ हो, उसका समुचित आदर किया जाय।"[69]

अलंकार–सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी, अनूप शर्मा और हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' ने अलंकार प्रयोग के सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त किये हैं। स्वयं सनेही जी ने काव्य को अलंकारों से बोझिल न कर उसके स्वाभाविक प्रयोग का समर्थन किया है। उनकी दृष्टि में अलंकारों के चमत्कारिक प्रयोग से काव्य में भावों की हत्या हो जाती है। वे कहते है– "अलंकारों ने तो कविता का नाश कर दिया है। जब स्त्रियाँ तक अलंकारों के बोझ को फेंक रही है, तो बेचारी कविता ने ही क्या कुसूर किया है कि उसे अलंकारों से जकड़ा जाय।"[70]

पं० अनूप शर्मा का विचार है कि जब साधारण शब्द भावों को संवहन करने में असक्षम हो जाते हैं, तब गम्भीर एवं अरूप भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए अलंकार की आवश्यकता प्रतीत होती है। उनकी दृष्टि में अलंकारों का गौण स्थान होते हुए भी उसकी महत्ता अक्षुण्ण है, क्योंकि अतिशय गूढ़ तत्त्वों को अलंकारों के प्रयोग द्वारा सहज सुबोध्य बना दिया जाता है। यथा–"कवि मनुष्यों को आकर्षित करने के लिए, अलंकारों का प्रयोग करता है, क्योंकि साधारण शब्द इतने निर्बल होते हैं कि वे गम्भीर और उदार भावों का भार वहन नहीं कर सकते। साथ ही, अमूर्त भावों को साकार करने का और साधन ही नहीं है, इसीलिए अलंकारों का साधन गौण होते हुए भी अनिवार्य हो जाता है।"[71]

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' भी काव्य में अलंकारो का प्रयोग भावाभिव्यंजन हेतु स्वीकार करते है। जब कवि मात्र चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही अलंकार का प्रयोग करने लगता है, तभी काव्य के भावों का ह्रास होने लगता है। अतः काव्य में भावानुरूप ही अलंकार प्रयुक्त होने चाहिए. उनके सायास प्रयोग निरर्थक हैं इसी सन्दर्भ में हृदयेश जी कहते हैं– कविता

में भाव को स्पष्ट करने के लिए उपमा, अलंकारादि का प्रयोग किया जाना चाहिए, किन्तु जहाँ पर उपमा को ठीक फिट करने के लिए भाव का गला तोड़ा-मरोड़ा जाता है, वहाँ पर हमारी क्षुद्र सम्मति में कविता रह ही नहीं जाती ।"[72]

छन्द—छन्द के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के कवियों ने पर्याप्त विचार अभिव्यक्त किये, जो परम्परानुमोदित होते हुए भी उनकी सन्तुलित दृष्टि के प्रतीक हैं। स्वयं सनेही जी काव्य में छन्द सौष्ठव, प्रवाह, गतिशीलता, शुद्ध छन्द निर्माण की शिक्षा और स्वछन्द छन्द के प्रयोग के पक्षधर थे। उनकी दृष्टि में काव्य में अजस्र छन्द का प्रवाह समीचीन है। छन्द की गति भी नियमानुसार होनी चाहिए। मुक्तक छन्दों में मात्राओं की गणना करने से छन्द की गति कभी-कभी ठीक नहीं रहती है, परन्तु गणात्मक छन्दों में गणों के नियमपूर्वक प्रयोग से छन्द की गति ठीक रहती है। छन्द की रचना की शुद्धता छन्द गति पर ही निर्भर करती है। यथा—"छन्द में गति प्रधान वस्तु है। गणात्मक छन्दों में तो गण नियमपूर्वक आने से गति ठीक हो जाती है, परन्तु मात्रिक वृत्तों की गणना ठीक होने से ही काम नहीं चलता। जब तक छन्द की गति (रवानी, धुन या लय) ठीक नहीं, छन्द की रचना शुद्ध नहीं होती।"[73]

पं० अनूप शर्मा छन्द की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि छन्द कवि के अन्तर्मन की वीणा के स्वर का बाह्याकार है। अनूप शर्मा कहते हैं—"छन्द कवि के अन्तर्नाद का बाह्य स्वरूप है।"[74] कवि के अन्तर्मन में जो भाव संगीत गुंजरित होते रहते हैं, वही छन्द की भित्ति पर प्रति गुंजरित हो जाते हैं। उनका मत है—"वह शाश्वत गान जो कवि के हृदय में ध्वनित हो रहा है, अलंकार के वायु द्वारा संचालित होकर छन्द की भित्ति पर प्रतिध्वनित होता है।"[75]

सनेही-मण्डल के अन्य कवियों में आचार्य वचनेश मिश्र जो पिंगल शास्त्र के मर्मज्ञ थे, के अपने विचार के अनुसार वेद वाणी से लेकर सभी विद्या के ज्ञान कण्ठाग्र करने के लिए छन्द की आवश्यकता का अनुभव होता रहा है। छन्द के आश्रय से प्राचीनतम काव्य आज भी लोकप्रियता प्राप्त किये हुए हैं। वचनेश जी कहते हैं—"वेद वेदांग ही क्या और भी जितनी विद्यायें हैं, सबका वाणी भूमि में चिर संचार प्रसार रखने के लिए उनका छन्दोबद्ध करना ही परमोपाय है, जिसके सहारे सहस्रों वर्षों का हमारा साहित्य आज तक कण्ठाग्र बना हुआ है।"[76] उनकी धारणा है कि मात्र छन्द ग्रंथों के मनन से किसी भी प्रकार की छन्दों की रचना तब तक सम्भव नहीं जब तक मान

वीय अन्तर्मन की लय या गति का आश्रय न ग्रहण किया जाय।"[77]

मात्र कवि के लिए ही नहीं अपितु पाठकों को भी अन्त की यतियो एव वाक्य के शब्दांश का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि ये छन्द गति के मूलाधार हैं। वचनेश जी कहते हैं–"वाक्य में शब्दांश और उनके अन्त की यतियाँ ही छन्दोगति का आधार हैं। अतएव पाठकों को इनका पूरी तरह अनुभव और अभ्यास कर लेना चाहिए।"[78]

स्फुट काव्यादर्शों के विभिन्न अंगों में सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी की 'समस्यापूर्ति विषयक काव्यादर्श' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी समस्यापूर्ति काव्य रचना के प्रति विशेष रुचि थी। वे पूर्तियाँ करने में बडे पटु थे। उनकी दृष्टि में समस्यापूर्ति काव्य की एक ऐसी कसौटी है, जिस पर कवि की प्रतिभा का मूल्यांकन किया जा सकता है। समस्यापूर्ति की रचना साधारण कवि के वश की नहीं, मात्र प्रतिभाशाली कवि ही इस रचना में अपना कौशल प्रकट कर सकता है। यथा–"किसी समस्या की पूर्ति करना एक अच्छे कलाविद् का कार्य है। प्रतिभाशाली कवि अपने काव्य कौशल से उसमें जो चमत्कार पैदा कर देता है, वह देखते ही बन पड़ता है। इस प्रकार समस्यापूर्ति एक प्रकार की कसौटी है, जिस पर कवि की प्रतिभा की परख होती है।"[79]

काव्य में अनुभूति तत्त्व के सम्बन्ध में लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' के अनुसार जिस कवि में अनुभूति का अभाव होता है, उसे अन्य कवियों से भावों को उधार लेना पड़ता है। जब तक कवि की अनुभूति निजी न होगी, तब तक वह काव्य रचना में असफल ही रहेगा। वस्तुतः काव्य की रचना की नहीं जाती, प्रत्युत अनुभूति का प्रवाह ही उसे काव्य सृजन के लिए प्रेरित करता है। डॉ० 'निशंक' कहते हैं–"यदि हममें भक्ति की अनुभूति नहीं है तो हम भक्ति भावना की व्यंजना के लिए भक्त कवियों से उधार मांगने दौड़ते हैं। उसी प्रकार यदि हमें किसी सौन्दर्य ने प्रभावित नहीं किया तो उपमानों के सहारे उसका चित्रण उतना मनोरम नहीं हो सकता है।"[80]

सनेही जी का काव्यादर्श यद्यपि उनके मण्डल के अधिकांश कवियों का पथ प्रदर्शक बना तथापि अनेक कवियों की मौलिक स्थापनायें भी अपना पृथक् महत्त्व रखती है। पं० अनूप शर्मा ने व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप मे काव्य के स्वरूप पर विचार किया और उसमें सौन्दर्य तत्त्व को विशेष रूप से अन्तर्निहित माना। जहाँ सनेही जी मात्र काव्य के स्वरूप का ही विवेचन करते हैं, वहाँ अनूप शर्मा काव्य और कवि दोनों के स्वरूप पर प्रकाश डालते है ६ यण पाण्डेय हृदयेश ने काव्य को मानव मन की सुमधुर

कोमल अनुभूतियों से सम्पृक्त माना। श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' ने अतृप्तावस्था जन्य अपनी विकलता को काव्य के स्वरूप निर्धारण में विशेष स्थान दिया। प्रणयेश शुक्ल ने काव्य की परिभाषा न देकर केवल कवि कर्म पर ही विचार किया। डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने कवि कर्म के दायित्व पर विशेष बल दिया। काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में सनेही जी ने जहाँ काव्य की आत्मा रस को स्वीकार करते हुए रसराज श्रृंगार का महत्त्व प्रतिपादित किया, वहाँ वचनेश मिश्र ने वात्सल्य रस को रसराज के रूप में मान्यता देकर नवीनता का समावेश किया। पं० अनूप शर्मा ने परम्परा पालन के साथ अदृश्य चित्र एवं अश्रुत नाद को काव्य की आत्मा के रूप में समर्थन दिया।

काव्य-हेतु के सम्बन्ध में अनूप शर्मा और प्रणयेश शुक्ल ने सनेही जी का अनुसरण करते हुए प्रतिभा को प्रमुख काव्य-हेतु स्वीकार किया। प्रणयेश शुक्ल ने काव्य-हेतु को व्यापक परिवेश प्रदान करते हुए आर्थिक सम्पन्नता, कवियों का सम्पर्क, स्वभाव की कोमलता एवं वंशपरम्परागत प्राप्त कवित्व शक्ति को भी काव्य-हेतु के रूप में समर्थन दिया।

अनूप शर्मा ने काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए मानव जीवन में नैतिकता, सुख, शान्ति, सौन्दर्य तथा उज्ज्वलता के समावेश को समर्थन दिया। 'हृदयेश' ने उपदेश मात्र को अस्वीकार करते हुए राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान एवं तप्त मानवीय वातावरण को अमृतमय परिवेश प्रदान करने को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया।

काव्य के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में सनेही जी ने अपना कोई प्रत्यक्ष मत न प्रस्तुत करते हुए पूर्ववर्ती तथा समसामयिक समस्त कवियों के काव्य विषय को ग्रहण करने का समर्थन किया। पं० अनूप शर्मा ने समस्त विश्व की वस्तुओं को काव्य का वर्ण्य-विषय स्वीकार किया। 'हृदयेश' ने दैनिक जीवन की घटनाओं एवं मानव के रागात्मक भावों को ग्रहण करते हुए इस क्षेत्र में नवीनता दिखाई। श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' ने मानवीय भावों में वेदनात्मक एवं नैराश्यात्मक संवेदनाओं के ग्रहण पर बल दिया।

काव्य-शिल्प के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के प्राय: सभी कवियों ने सनेही जी की भाषा के प्रयोगात्मक स्वरूप को ग्रहण किया। उनके मण्डल के अधिकांश कवियों ने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों को समान रूप से ग्रहण किया। सनेही जी ने व्याकरणानुमोदित, लोकोक्ति एवं मुहावरों से युक्त सहज भाषा को ग्रहण करने का समर्थन किया। 'हृदयेश' ने सनेही जी का अनुगमन करते हुए भी सनेही जी की अपेक्षा भाषा को मधुरता

एवं कोमलता पर बल दिया। अभिराम शर्मा ने भाषा के व्यवस्थित एवं प्रसादादि गुणों से युक्त भाषा प्रयोग पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की।

अलंकारों के प्रयोग के क्षेत्र में सनेही जी ने चमत्कार विहीन अलंकारो के सहज प्रयोग का समर्थन किया। अनूप शर्मा ने अलंकारों के प्रयोग की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए उसे दुरूह भावों को स्पष्ट करने में सहायक माना। 'हृदयेश' ने भी भावों के स्पष्टीकरण हेतु अलंकारों का काव्य मे प्रयोग करने का समर्थन किया।

छन्द प्रयोग के क्षेत्र में सनेही जी ने सौष्ठव, प्रवाह, गतिशीलता एव गति नियम की आवश्यकता का समर्थन किया। अनूप शर्मा ने छन्द को मानव के अन्तर्नाद का बाह्य स्वरूप स्वीकार किया। वचनेश मिश्र ने काव्य में छन्द की अनिवार्यता एवं छन्द ज्ञान की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी दृष्टि में काव्य को कण्ठाग्र करने में छन्द सहायक तत्त्व होता है। अतः कवि और पाठक दोनों को इसका ज्ञान होना चाहिये।

सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी के 'समस्यापूर्ति' और डॉ० लक्ष्मी शंकर मिश्र 'निशंक' के काव्यानुभूति विषयक काव्यादर्श, विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। सनेही जी ने समस्यापूर्ति काव्य रचना को दुरूह कर्म मानते हुए उसे कवि कर्म की कसौटी के रूप में स्वीकार किया, जिसमें कवि की विलक्षण प्रतिभा का विनियोग अपेक्षित है। डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने अनुभूति को काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार करते हुये उसे काव्य सृजन का मूल प्रेरक तत्त्व माना। अनुभूति की सघनता के कारण कवि स्वतः काव्य सृजन के लिये तत्पर होता है।

समग्रतः सनेही-मण्डल के कवियों का काव्य-चिन्तन अधिकांशतः परम्परानुमोदित है, लेकिन सनेही जी अपनी काव्य साधना तथा संगठनात्मक एव निर्देशात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप अपने मण्डल के कवियों का नेतृत्व कर उनके पथ-प्रदर्शक के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। सनेही और उनके मण्डल के कवियों ने भारतेन्दु-मण्डल की परम्परानिष्ठ चेतना के साथ महावीरप्रसाद द्विवेदी की नव्यतावादी काव्य दृष्टि का सामंजस्य करके अपनी स्वतन्त्र काव्य दृष्टि एवं काव्य-पथ का निर्माण किया।

सन्दर्भ

१. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : कृषक-क्रन्दन, पृ. ३०
शिशुपाल सिंह 'शिशु' : छोड़ो-हिन्दुस्तान, पृ. १
२. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. १६५
३. त्रिशूल : त्रिशूल-तरंग, पृ. ६
४. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. १०
५. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : करुणा-कादम्बिनी, पृ. १३
६. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, पृ. १७०
७. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, वर्ष ७, अंक १, अप्रैल १९३४, पृ. १६
८. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक
९. प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ. ६४
१०. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सरस्वती, अगस्त १९४१, पृ. ४६२
११. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. २
१२. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' . प्रताप, १ मार्च, सन् १९२०, पृ. ९
१३. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : करुणाकादम्बिनी, पृ. ५८
१४. श्री हिन्दी साहित्य-मण्डल कानपुर : काव्य कलश, पृ. ४
१५. लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : कानपुर के कवि, पृ. ११७
१६. उपरिवत्
१७. श्री हिन्दी साहित्य-मण्डल कानपुर : काव्य-कलश, पृ. ६
१८. मुझे यह विवरण कानपुर—के श्री कृष्णबिहारी शुक्ल 'प्रभात' से प्राप्त हुआ।
१९. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : सुकवि—विनोद, अगस्त १९७९, पृ० ४—५
२०. डॉ० अच्युदानन्द मिश्र : श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के काव्य का अनुशीलन (अप्रकाशित-शोध-प्रबन्ध), पृ. ३०४
२१. डॉ. अच्युदानन्द मिश्र : श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के काव्य का अनुशीलन (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध) पृ. ३०४
२२. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, अक्टूबर १९३८, पृ. ७
२३. उपरिवत्, सितम्बर १९४०, पृ. १६
२४. उपरिवत्, जनवरी. १९३०, सम्पादकीय
२५ अनूप शर्मा · सिद्धार्थ कवि और काव्य प १०
२६ वही

२७. उपरिवत्, पृ. २
२८ वही, पृ. १४
२९. वही, पृ. २
३०. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, कवि और काव्य, पृ. ४
३१. उपरिवत्, पृ. ४
३२. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. ३–४
३३. उपरिवत्, मधुरिमा, पृ. १४
३४. उपरिवत्, पृ. १३
३५. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. ४
३६. उपरिवत्, मधुरिमा पृ. ४
३७. उपरिवत्, पृ. १४
३८. अभिराम शर्मा : निशीथिनी, भूमिका, पृ. १२
३९. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मानव, पृ. १०
४०. प्रणयेश शुक्ल : वीणा, अक्टूबर १९३३, पृ. ९३७
४१. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : सुकवि–विनोद, अप्रैल १९८१, पृ. ३
४२. उपरिवत्, पृ. ४
४३. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' सुकवि १९२८, सम्पादकीय
४४. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, जनवरी १९२९, सम्पादकीय
४५. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, कवि और काव्य, पृ. १
४६. उपरिवत्, पृ. ५
४७. ब्रह्मदत्त दीक्षित : वचनेश अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. ३६
४८. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, चैत संवत् १९८३, पृ. १०
४९. उपरिवत्, अक्टूबर १९३८, पृ. ८
५०. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, दो-शब्द, पृ. २
५१. प्रणयेश शुक्ल : सुकवि, जुलाई १९३४, पृ. १०
५२. प्रणयेश शुक्ल : सुकवि, अगस्त, १९३६, पृ. ५
५३. उपरिवत्, पृ. ८
५४. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, कवि और काव्य, पृ. २
५५. वही, पृ. ११
५६. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : मधुरिमा, पृ. ९–१०
५७. उपरिवत्, पृ. १२
५८. उपरिवत्, कसक, पृ. ४
५९ पाण्डेय हृदयेश' कसक पृ ६

६०. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, नवम्बर १६३५, पृ· ५८
६१. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, कवि और काव्य, पृ· ६
६२. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. ५
६३. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मानव, पृ १०
६४. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, सितम्बर १६२६, सम्पादकीय
६५. उपरिवत्, सितम्बर १६२८, सम्पादकीय
६६. उपरिवत्, मई १६२८, सम्पादकीय
६७. उपरिवत्
६८. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. ६
६९. प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, भूमिका, पृ. ७
७०. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही : मई १६२८, सम्पादकीय
७१. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ : कवि और काव्य, पृ. ५
७२. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' मधुरिमा, पृ. ८
७३. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, १६२६, अप्रैल, सम्पादकीय
७४. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, कवि और काव्य, पृ. ५
७५. उपरिवत्
७६. वचनेश मिश्र : सुकवि, १६३७, अक्टूबर, पृ. ४
७७. उपरिवत्, पृ. ६
७८. वचनेश मिश्र : सुकवि, १६३७ दिसम्बर, पृ. ७
७९. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, अगस्त १९३३, पृ. ५४
८०. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : सुकवि-विनोद, अप्रैल १६८१ पृ. ३

३
सनेही-मण्डल के कवि और उनकी काव्य रचनाएँ

पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

सुकवि सम्राट पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' का जन्म श्रावण शुक्ल त्रयोदशी सम्वत् १६४० वि० सन् १८८३ ई० को उन्नाव जनपद के हड़हा नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता पं० अवसेरीलाल शुक्ल के दो विवाह हुए थे। उनकी दूसरी पत्नी रुक्मिणी देवी से सनेही जी का जन्म हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में पिता का निधन हो जाने के कारण गयाप्रसाद शुक्ल के संरक्षक उनके चचेरे भाई पं० लालप्रसाद शुक्ल बने। सनेही जी का विवाह १४ वर्ष की अवस्था में सम्पन्न हुआ।

सनेही जी ने उन्नाव जनपद के पुरवा कस्बे के मिडिल स्कूल से सन् १८६७ में प्रथम श्रेणी में उर्दू मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १८६६ में हड़हा से आठ मील दूर बरहर नामक ग्राम के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक के रूप में सनेही जी की नियुक्ति हुई। सगवर ग्राम में जब ये प्राइमरी स्कूल के अध्यापक थे, तभी से ये काव्य सृजन में तत्पर हो गये। सनेही जी के काव्य गुरु हड़हा निवासी गिरधारीलाल रीति-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। उनसे सनेही जी ने काव्य-शास्त्र का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। सन् १६०२ में सनेही जी ने शिक्षण-पद्धति का प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु नार्मल स्कूल लखनऊ में प्रवेश लिया। वहाँ वे पुस्तकालय मन्त्री के पद पर नियुक्त हुए। इसका लाभ उठाकर सनेही जी ने हिन्दी, उर्दू और संस्कृत साहित्य का अच्छा ज्ञान अर्जित किया। लखनऊ में सनेही जी का कवियों से सम्पर्क बढ़ा। सन् १६०४ में सनेही जी ने नार्मल की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा इसी वर्ष उनकी नियुक्ति सगवर में पुनः हुई। सन् १६०६ में वे सफीपुर से उन्नाव के मिडिल स्कूल में सेकेण्ड मास्टर के रूप में स्थानान्तरित हुए। यहीं से सनेही जी की रचनाएँ 'रसिक-रहस्य' 'साहित्य सरोवर' और 'रसिक मित्र' आदि उस समय की साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं रसिक

मित्र' में सनेही जी की समस्यापूर्तियाँ प्रकाशित होती थीं। इसी समय राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति उनकी निष्ठा विकसित हुई। सन् १६१३ में कानपुर में अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादकत्व में साप्ताहिक 'प्रताप' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह क्रान्तिकारी विचारधारा का पत्र था। सनेही जी की प्रथम कविता 'मृत्यु शैया पर जयचन्द' शीर्षक से इसी 'प्रताप' में ही प्रकाशित हुई।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से सनेही जी ने सन् १६२८ में कानपुर में 'सुकवि-प्रेस' की स्थापना की और कविता प्रधान 'सुकवि' नामक पत्र का प्रथम अंक अप्रैल में प्रकाशित किया। इसमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का यह 'मोटो' प्रथम पृष्ठ पर इस प्रकार छपा था—

"लोकोत्तरानन्द के दाता, धाता स्वीय सृष्टि के आप।
धन्य कृती कवियों का कौशल, धन्य अमृत वर्षी आलाप॥"[1]

'सुकवि' का संपादन सनेही जी ने २२ वर्षों तक किया। जब सन् १६५१ में वे हड़हा वापस आ गये, तब 'सुकवि' का प्रकाशन बन्द हो गया। इस पत्र के माध्यम से सनेही जी ने अन्य कवियों को प्रेरित किया। हितैषी, अनूप शर्मा, हृदयेश, रामकुमार वर्मा, बलदेवप्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा, श्यामनारायण पाण्डेय, सुधीन्द्र, चन्द्रप्रकाश वर्मा, मोहनलाल महतो, वियोगी, अभिराम, प्रणयेश, बालकृष्ण राव, किशोरीरमण टण्डन, असीम दीक्षित और विनोद रस्तोगी आदि की रचनाएँ 'सुकवि' के अनेक अंकों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहीं।

'प्रताप' के प्रकाशन-काल से ही सनेही जी ने दो उपनामों से काव्य सृजन प्रारम्भ किया। 'सनेही' उपनाम से उनकी कविताएँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती थीं तथा इस नाम से ही वे काव्य जगत में प्रतिष्ठित हुए। 'त्रिशूल' उपनाम से उनकी कविताएँ 'प्रताप' में प्रकाशित हुई, जो राष्ट्रीय बोध एवं क्रान्ति चेतना की अभिव्यक्त करती हुई दिखाई पड़ती हैं। अब तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से सनेही जी का सम्पर्क प्रगाढ़ हो चुका था। अतएव 'सरस्वती' के माध्यम से सनेही जी का हिन्दी काव्य जगत में सम्यक् प्रचार हुआ। सन् १६२१ में राष्ट्र में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिससे प्रभावित होकर सनेही जी ने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। सन् १६२३ में अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन कानपुर में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सनेही जी के संयोजकत्व में लाठी मोहाल स्थित लक्ष्मणदास धर्मशाला में एक अखिलभारतीय कवि सम्मेलन आयोजित हुआ। इसके बाद सनेही जी ने अनेक बार विभिन्न कवि सम्मेलनों

में जाकर उनके सभापति के पद को सुशोभित किया।

सनेही जी सन् १९५१ में कानपुर छोड़कर हड़हा में स्थायी रूप से निवास करने लगे। कानपुर में सनेही जी अपने कवि शिष्य श्री किशोरचन्द्र कपूर के निवास स्थान 'किशोर-कुंज' लाठी मोहाल में ठहरते थे। सनेही जी का निधन एक लम्बी बीमारी के पश्चात् सन् १९७२ में कानपुर के उरसला हार्समैन चिकित्सालय के मुन्नालाल वार्ड में हुआ था।[a]

काव्य रचनाएँ– अब तक सनेही जी के काव्य का सम्पूर्ण संग्रह प्रकाशित नहीं हो सका है। सनेही जी की खड़ी बोली रचनाओं का प्रकाशन कुछ पुस्तकों के रूप में अवश्य हुआ है, परन्तु उनकी ब्रजभाषा-रचनाएँ पत्रिकाओ में बिखरी पड़ी है। उनका अभी तक पुस्तकाकार प्रकाशन नहीं हुआ है। सनेही जी की उपलब्ध काव्य रचनाओं का परिचय इस प्रकार है–

१– **कृषक-क्रन्दन**– इस रचना का तृतीय संस्करण सन् १९२३ मे शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकाय कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसमे देश के कृषकों की करुण अवस्था का वर्णन हुआ है। यह रचना खडी बोली में है।

२– **त्रिशूल-तरंग**– इस रचना का तृतीय संस्करण संवत् २००० मे शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसमे उनकी 'त्रिशूल' नाम से रचित सन् १९१८ तक की रचनाओं का संग्रह हुआ है। इसमें सनेही जी की हिन्दी और उर्दू दोनों प्रकार की काव्य रचनाओ का संकलन हुआ है। इस संग्रह की रचनाएँ राष्ट्रीय भावनापरक हैं। इसमे कुल ८८ रचनाएँ संकलित हैं। इनमें गुजरा हुआ जमाना, हिन्दोस्ताँ मेरा, फरियादे बुलबुल, जातीय-गीत, गरीबों की गुहार, स्वराज्य-सन्देश, हिन्दी का पश्चाताप्, शहीदे-वतन, दशहरा और मुहर्रम तथा तिलक आगमन आदि विशेष आकर्षक एवं प्रभावशाली हैं।

३– **राष्ट्रीय मन्त्र**– इसका प्रथम संस्करण जनवरी सन् १९२१ मे रमाशंकर अवस्थी, लाठी मोहाल, कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसमें 'त्रिशूल' की सात सामयिक रचनाएँ संकलित हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय-गीत, सत्याग्रह, साम्यवाद, कर्मक्षेत्र, जातीयता, असहयोग और स्वतन्त्रता। ये सभी रचनाएँ राष्ट्रीय भावधारा से ओत-प्रोत हैं।

४– **करुणा-कादम्बिनी**– सन् १९५८ में भारती प्रतिष्ठान कानपुर से इसका प्रकाशन हुआ। इस संग्रह में सनेही जी की बारह रचनाएँ संकलित हैं, जो करुण रस से आप्लावित हैं। इन रचनाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं कौशल्या-क्रन्दन, बन्धु वियोग दुखिनी-दमयन्ती दुर्योधन-विलाप अशोक वन

में सीता, शैव्या-सन्ताप, श्रवण-शोक, विधुर-विलाप, आर्त-कृषक, बापू की चिर निद्रा, हा ! द्विवेदी जी और बुझा हुआ दीपक।

५–कुसुमांजलि– सनेही जी की इस रचना का प्रथम संस्करण सन् १६१५ में शिवनारायण मिश्र प्रताप कार्यालय कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की रचनाएँ विभिन्न विषयों से सम्बद्ध हैं। कुसुमांजलि में संकलित प्रमुख हृदयस्पर्शी रचनाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं– ईश्वर-स्तुति, चन्द्र, पहाड़, मोर, नम्रता, उपकार और दया, जन्मभूमि, कृषक, काम करो और उद्यम आदि।

६–संजीवनी– इस रचना का प्रकाशन संवत् १६७८ में श्री गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' व्यवस्थापक, सस्ती हिन्दी पुस्तक माला कानपुर से हुआ। यह सनेही जी द्वारा संपादित एक काव्य ग्रन्थ हैं, जिसमें सनेही जी की भी कुछ रचनाएँ संकलित हैं। इनमें शीर्षक इस प्रकार हैं– राष्ट्रीय-गीत, कर्मक्षेत्र, जातीयता, साम्यवाद, स्वदेशी-व्रत चरखे-गीत, असहयोग, सत्याग्रह और अहिंसा संग्राम।

७–राष्ट्रीय-वीणा (द्वितीय-भाग)– इस रचना का प्रथम संस्करण सन् १९२२ में प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ। यह भी सनेही जी का एक संपादित ग्रन्थ है, जिसमें उनकी वनोद्देश्य शुभ-दिवस प्रतीक्षा, पुकार और होली शीर्षक रचनाएँ संकलित हैं।

८–कला में त्रिशूल– यह रचना सन् १९३० में गयाप्रसाद शुक्ल हिन्दी जाब प्रेस, कानपुर से प्रकाशित हुई।

६–प्रेम-पच्चीसी– यह सनेही जी द्वारा सन् १६५० में ब्रजभाषा में रची गयी थी, परन्तु अब यह अप्राप्य है।[8]

१०–गप्पाष्टक– इसकी रचना १९०० ई० पूर्व हुई, जिसमें सनेही जी की हास्य रस की कविताएँ संकलित हैं।

सनेही जी की सभी काव्य रचनाएँ उनके काव्यादर्श से अनुप्रेरित हैं। काव्यात्मा के सम्बन्ध में उनका विचार था कि काव्य में बुद्धि तत्व की अपेक्षा अनुभूति तत्त्व का प्रमुख स्थान है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी करुणा-कादम्बिनी' है। इस रचना में सनेही जी के हृदय के स्वर सजीव रूप में मुखरित हुए हैं और करुणा की धारा अपने प्रबल रूप में प्रवाहित होकर पाठक को रसाप्लावित कर देती है। आचार्य द्विवेदी के समान आचार्य सनेही भी काव्य के वर्ण्य विषय के क्षेत्र की व्यापकता के समर्थक थे और इसी के परिणामस्वरूप उनकी 'त्रिशूल–तरंग' और 'कुसुमांजलि' रचनाओं में विविध वर्ण्य विषय गृहीत हुए हैं भाषा के सन्दर्भ मे सनेही जी

का प्रमुख मौलिक आदर्श मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग का रहा और इसका समर्थन उनकी प्रायः समस्त रचनाओं के द्वारा हुआ है। सनेही जी ने मण्डलीय काव्य भाषा के आदर्श के अनुरूप व्रज और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया। यदि उनकी 'प्रेम-पच्चीसी' व्रजभाषा में है, तो 'राष्ट्रीय-मन्त्र' खड़ी बोली में। उनका एक मौलिक काव्यादर्श समस्यापूर्ति विषयक काव्य सृजन का समर्थन भी रहा, जिसका प्रमाण 'सुकवि' में प्रकाशित 'समस्यापूर्ति-स्तम्भ' से मिल जाता है।

जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'– जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' का जन्म गंज-मुरादाबाद जनपद उन्नाव में मार्गशीर्ष शुक्ल शनिवार संवत् १९५२ वि० में हुआ। इनके पिता कान्यकुब्ज वंशावतंश पं० रामचन्द्र मिश्र थे। 'हितैषी' जी ने कानपुर के खत्री स्कूल में सातवीं कक्षा तक अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया तथा स्वाध्याय से बंगला और गुजराती भाषाओं का अच्छा ज्ञान अर्जित किया।

'हितैषी' जी की अभिरुचि बाल्यकाल से ही काव्य सृजन की ओर थी। उन्होंने अपनी एक रचना 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास प्रेषित की थी और यह निवेदन किया था कि यह रचना 'सरस्वती' के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित हो। द्विवेदी जी ने पत्र लिख कर उत्तर दिया "आप प्रतिभाशाली अवश्य हैं, परन्तु आप की प्रतिभा अभी अविकसित है। उन्नाव में सनेही जी रहते हैं। तुम उनसे संशोधन प्राप्त करो।" पत्र को लेकर 'हितैषी' जी सनेही जी के पास गये और उन्होंने उन्हें अपना काव्य गुरु स्वीकार किया।[4] सनेही जी के सम्पर्क में आकर 'हितैषी' जी की जन्मजात काव्य प्रतिभा जागृत एवं विकसित हुई।

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में 'हितैषी' जी कलकत्ते में गिरफ्तार करके डेढ़ साल के लिए कारावास भेजे गये। सन् १९२३ में इन्होंने कानपुर में, 'झण्डा-आन्दोलन' संचालित किया था। इस काण्ड में इन्हें ढाई वर्ष का कारावास झेलना पड़ा।

काव्य रचनाएँ– प्रकाशित काव्य रचनाएँ–

१–**मातृगीता**– इसका प्रकाशन पी० एल० मिश्रा, शारदा सेवक सदन, कानपुर से सन् १९३७ में हुआ। इस रचना में 'वन्देमातरम्' की महिमा का ओजस्वी वर्णन हुआ है। यह 'हितैषी' जी की प्रारम्भिक रचना है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक ही दिन में रची गयी थी, परिणामतः रचना के कुछ स्थलों में शैथिल्य दृष्टिगत होता है।

२–**कल्लोलिनी** इसकी रचना सन १९३७ में हुई तथा इसका

शारदा सेवक सदन, लखनऊ से हुआ। यह रचना घनाक्षरी और सवैया छन्दों में रचित है। कल्लोलिनी के प्रमुख आकर्षक शीर्षक इस प्रकार हैं– कामना, कातर-प्रार्थना, दीपक, विरह, नीरव-रजनी, स्वदेश-महेश, कोयल से, किरण, परिचय महापात्री से, गरीब, भावापहरण, सुख, गगनोद्गार, ध्रुव से, वर्षा-नर्तकी और विकल्प आदि। इस रचना के माध्यम से 'हितैषी' जी ने हिन्दी काव्य संसार में विशेष ख्याति अर्जित की है।

३–**बैकाली**– इसकी रचना सन् १९२५ से ४० के मध्य हुई तथा इसका प्रकाशन शारदा सेवक सदन लखनऊ से हुआ। इसमें संकलित प्रमुख हृदय स्पर्शी कविताओं के शीर्षक इस प्रकार हैं– बैकाली, प्रियतम के द्वार, वंचित-विनय, स्वप्न, पथिक, वियोग-क्षण, अब और तब, उच्छवासों से, त्रिवेणी से, प्रातः कालिक-सन्देह, ताड़ीवाला, प्यासा-मजदूर और हाहाकार आदि।

४–**दर्शना**– इसका प्रकाशन श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र कानपुर से सन् १९६२ में हुआ। यह कृति 'हितैषी' जी के निधनोपरान्त प्रकाशित हुई। इसमें दर्शन और अध्यात्म सम्बन्धी दो सौ घनाक्षरी और सवैये हैं। इस रचना में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्राकृतिक वर्णन और रहस्यवादी विषयों का वर्णन हुआ है।

अप्रकाशित काव्य रचनाएँ– १–**प्रेमाम्बु-प्रवाह**– यह कवि की हस्तलिखित प्रति है। यह कानपुर के श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद जी के पास सुरक्षित है।[6] इसमें 'हितैषी' जी की तेरह रचनाएँ संग्रहीत हैं। यह रचना कवि की यौवनास्था की प्रारम्भिक रचना है। इसकी भाषा व्रज और उर्दू मिश्रित है। इस रचना में विप्रलम्भ शृंगार तथा प्रेमी की प्रेम-दृढ़ता का वर्णन हुआ है।

२–**भारतीय भावनाएँ (भाग-एक)**– इस रचना में राष्ट्रीय आन्दोलन के वातावरण से रंजित राष्ट्रीय भावनाओं का वर्णन हुआ है। सम्पूर्ण रचना व्रजभाषा में है। इसमें कवित्त और सवैया छन्दों के प्रयोग की प्रमुखता है। साथ ही इस रचना में छप्पय और भजन भी संकलित हैं। इस संग्रह में संकलित कविताओं की संख्या ३५ है। यह रचना श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र ७६/५६८ कुली बाजार, कानपुर के पास सुरक्षित है।[7]

३–**भारतीय भावनाएँ (भाग-दो)**– इस संकलन की कविताओं में हितैषी जी की दृष्टि सामाजिक पक्ष पर विशेष रूप से केन्द्रित रही है। इसकी कुछ कविताओं में राष्ट्रीय बोध के विषयों को भी ग्रहण किया गया है। इसकी भाषा पर उर्दू का संस्कार दिखाई पड़ता है तथा इसमें आलंकारिकता का पुरस्कार प्रखर है इसमें घनाक्षरी छन्द का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है

यह रचना भी श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र ७६/५६८, कुली बाजार कानपुर के पास है।[7]

४–उमर खैयाम की रूबाइयों की टीकाएँ– इस रचना में तीन खण्ड हैं। इसमें 'हितैषी' जी ने उमर खैयाम की रूबाइयों पर टीकाएँ की हैं। यह रचना भी श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र ७६/५८६, कुली बाजार, कानपुर के पास से प्राप्त की जा सकती है।[8]

५–मधु-मन्दिर– इस रचना में १४१ घनाक्षरी और सवैया छन्द हैं। यह मदिरावाद की परम्परा की एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें जीव और जीवन के आनन्द की प्राप्ति का वर्णन हुआ है। उमर खैयाम की रूबाइयत की भाव भूमि पर आधारित यह रचना भारतीय परिवेश से सम्पृक्त है।[9]

हितैषी ली की काव्य रचनाएँ सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों का अनुगमन करती हुई भी नवीनता की ओर उन्मुख दृष्टिगत होती हैं। मण्डलीय आदर्श के अनुरूप ही उनकी रचनाओं मे विविध अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। सनेही-मण्डल के अधिकांश कवियों के काव्य के वर्ण्य-विषय प्रमुखत मानवीय राग चेतना और आध्यात्मिक सौन्दर्य रहे हैं, जिनका पालन क्रमश हितैषी जी की 'कल्लोलिनी' और 'दर्शना' रचनाओं में हुआ है। सनेही-मण्डल के कवियों की मुख्य प्रवृत्ति घनाक्षरी और सवैया छन्दों के प्रयोग की रही, जिनमें उनकी रचित 'दर्शना' और 'मधु-मन्दिर' रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। काव्य के वर्ण्य-विषय की व्यापकता हितैषी जी की 'कल्लोलिनी' और 'बैकाली' में प्राप्त होती है। सनेही-मण्डल की काव्यभाषा के आदर्श के अनुरूप हितैषी जी ने ब्रज भाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग करते हुए भारतीय-भावनाएँ (भाग–एक) की रचना ब्रजभाषा में और 'कल्लोलिनी' तथा 'बैकाली' की रचना खड़ी बोली में की।

पं० अनूप शर्मा– अनूप शर्मा का जन्म भाद्रपद मास कुश ग्रहणी अमावस्या संवत् १९५६ वि० में नवीनगर जिला सीतापुर में हुआ। इनके पिता का नाम पं० बद्रीप्रसाद शर्मा था। अनूप जी ने नवीनगर से संवत् १९६२ वि० में प्राइमरी, लहरपुर से संवत् १९४७ वि० में मिडिल तथा बिसवां के सेठ जयदयाल हाई स्कूल से संवत् १९७६ वि० में 'स्कूल लिविंग सार्टीफिकेट' की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अनूप जी ने केनिंग कालेज लखनऊ से संवत् १९७८ में इन्टर तथा संवत् १९८० में उसी कालेज से द्वितीय श्रेणी मे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी विषय लेकर बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। स्वामी नारायणानन्द की प्रेरणा से अनूप जी ने सन् १९२४ में कानपुर से कवीन्द्र' नामक • मासिक पत्रिका का प्रारम्भ किया जो मात्र पाँच

६ मास तक ही प्रकाशित हुई। वाराणसी से एल० टी० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद १९८२ वि० में सेठ जयदयाल हाई स्कूल बिस्वाँ में अनूप जी की नियुक्ति अध्यापक के रूप में हुई।

लखनऊ के बेनेट हाल (अब मालवीय हाल) में १९२१ ई० में एक कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसके सभापति पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' थे। उस कवि सम्मेलन में अनूप जी का काव्य-पाठ अत्यधिक प्रशंसनीय रहा, जिससे अनूप जी सनेही जी के विशेष स्नेह भाजन बन गये। इसके बाद वे लखनऊ के अतिरिक्त कानपुर के 'सनेही-मण्डल' के कवियों के साथ कवि सम्मेलनों में आमन्त्रित किये जाने लगे।[10]

संवत् २०११ वि० में अनूप जी की नियुक्ति आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र पर 'पंचायत-घर' कार्यक्रम में हुई। लगभग चार वर्ष तक इन्होंने आकाशवाणी में इसी पद पर कार्य किया।

काव्य-रचनाएँ–

१–**सुनाल**– यह एक खण्ड-काव्य है। इसकी रचना बिस्वाँ में सन् १९२५ से २९ के मध्य हुई। इसका प्रकाशन साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी से हुआ। इस रचना में २०८ सवैया छन्दों में सम्राट अशोक की पत्नी सुलोचना का सुनाल के प्रति प्रेम वर्णित है।

२–**सिद्धार्थ**– यह एक महाकाव्य है। इसकी रचना सीतामऊ में सन् १९२९ से १९३७ के मध्य हुई। इसका प्रकाशन हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से हुआ। इस रचना में कवि ने एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया', महाकवि अश्वघोष के 'बुद्धचरित' और रामचन्द्र शुक्ल कृत 'बुद्ध-चरित' के आधार पर गौतम बुद्ध के चरित्र का वर्णन किया है। इसकी रचना शुद्ध खड़ी बोली में सामासिक शैली में हुई है। इस रचना में कुल १८ सर्ग हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है– शुभ-स्वप्न, भाग्योदय, उन्मेष अनुकम्पा, अवरोध, संयोग, राग, अभिज्ञान, चिन्तना, भावी, अभिनिवेदन, महाभिनि-ष्क्रमण, व्यथा, संबोध, संदेश, यशोधरा, दर्शन और निर्वाण।

३–**सुमनांजलि**– यह एक स्फुट प्रसँग है। इसकी रचना बिस्वाँ में सन् १९२८ से १९३८ के मध्य हुई तथा इसका प्रकाशन हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई से सितम्बर १९३९ में हुआ। इस संग्रह में १६ रचनाएँ संग्रहीत है, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं– शारदावतरण, चित्तौड़-दर्शन, हरिश्चन्द्र घाट, ताजमहल, भर्तृहरि की गुफा, मार्तण्ड-मण्डल, गजेन्द्र-मोक्ष, मेरा ग्राम, स्वतन्त्रते! स्वागत, पुष्पलेखा, वंशी-विजय, अमृत और विष, त्रिराट-भ्रमण, दण्डी प्रयाण प्रकीर्ण पद्य और भषाई में शान्ति सम्पूर्ण संग्रह खड़ी बोली म

है और अन्तिम रचना को छोड़कर सम्पूर्ण रचना कवित्त छन्द में रचित है।

४–फेरि-मिलिबो– यह एक चम्पू काव्य है। इसकी रचना सीतामऊ में सन् १९३९ से १९४१ के मध्य हुई। इसका प्रकाशन हिन्दी प्रचारक मण्डल लखनऊ से हुआ। यह रचना ब्रजभाषा में रचित है। इस रचना में श्रीमद् भागवत् के प्रसंग पर आधारित सूर्य ग्रहण लगने पर कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों और श्रीकृष्ण मिलन के प्रसंग को वर्णित किया गया है। सम्पूर्ण रचना रोला छन्द में है, मात्र प्रारम्भिक एक छन्द राधिका हैं।

५–शर्वाणी– यह एक स्फुट स्तवन संग्रह है। इसकी रचना धामपुर मे सन् १९४३ से १९४८ के मध्य हुई। इसका प्रकाशन पारिजात प्रकाशन चांदनी चौक दिल्ली से जन्माष्टमी संवत् २००४ वि० में हुआ। सम्पूर्ण रचना खड़ी बोली मे घनाक्षरी छन्द में रचित है। शर्वाणी मे स्कन्धों का विभाजन इस प्रकार है– स्तुति चरणार्चन, चक्र चर्चा, मंडलाग्र-मण्डल और महिष्-वध। यह रचना भगवती दुर्गा के चरित पर आधारित है।

६–विराट-संग्राम– इसकी रचना धामपुर में सन् १९४४ में हुई। इसका प्रकाशन पं० अनूप शर्मा ने सन् १९४८ में स्वयं किया। यह रचना रगणात्मक छन्द में है।

७–वर्द्धमान– यह एक महाकाव्य है। इसकी रचना धामपुर में सन् १९४४ में हुई। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी से १० जुलाई सन् १९५१ में हुआ। इस महाकाव्य में जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का जीवन चरित्र वर्णित हुआ है। इसमें कुल १७ सर्ग हैं।

८–अग्नि-पथ– यह एक खण्ड-काव्य है। इसकी रचना लखनऊ में सन् १९५२ से १९५३ के मध्य हुई। इसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी बुक डिपो लखनऊ से हुआ। इस रचना में कुल सात सर्ग हैं। इस खण्ड-काव्य में रावण के अन्तिम चौबीस घण्टों के समय के घटना-मय, चरित्र-प्रधान भाव चित्र चित्रित हुए हैं। इसमें करुण और वीर रसों का प्राधान्य है, जिसमें शृंगार और शान्ति रसों का भी संयोग है। यह रचना गीतिका छन्द में है।

९–गांधी-चरित्र– यह एक महाकाव्य है। इसकी रचना राजकीय प्रेरणा से सन् १९५४–५५ में लखनऊ में हुई थी। यह अब तक अप्रकाशित है। इसमें युग-पुरुष गांधी के जीवन चरित का वर्णन हुआ है।

अनूप शर्मा की काव्य रचनाओं के विषय एवं शिल्प सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों के अनुरूप हैं। अनूप जी ने काव्य में सत्यं, शिवं और सुन्दर तीनों तत्त्वों के सन्निवेश पर बल दिया। इन तीनों तत्त्वों का सफल समाहार उनकी 'सिद्धार्थ', एवं 'सुमनांजलि' रचनाओं में दिखाई पड़ता है। काव्य-

प्रयोजन के सन्दर्भ में अनूप जी का विचार जीवन में मानवता, नैतिकता एवं शुचिता का संचार करना रहा तथा इसका समर्थन उनकी 'सिद्धार्थ', 'वर्द्धमान' और 'गाँधी-चरित्र' आदि रचनाओं में दिखायी पड़ता है। सनेही-मण्डल के कवियों द्वारा प्रयुक्त घनाक्षरी छन्द के अन्तर्गत उनकी 'शर्वाणी' रचनाएँ स्मर्तव्य हैं। भाषा प्रयोग के क्षेत्र में अनूप जी ने अपनी 'सिद्धार्थ' 'सुमनांजलि', 'शर्वाणी' और 'वर्द्धमान' रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग कर मण्डलीय आदर्श से भिन्न पथ ग्रहण किया। अनूप जी की शेष रचनाएँ प्रायः सनेही-मण्डल के आदर्श का अनुसरण करती हुई दृष्टिगत होती हैं।

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'– हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' का जन्म ग्राम पाली जनपद हरदोई में १० अक्टूबर सन् १९०६ में हुआ। इनके पिता का नाम पं० चन्द्रमौलि पाण्डेय था। हृदयेश जी के पिता ने शास्त्री, ज्योतिषाचार्य और साहित्याचार्य की उपाधियाँ अर्जित की थीं। हृदयेश जी ने भी पितृ परम्परा में साहित्यालंकार, काव्यकलाधर, कविरत्न, व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य और साहित्य-भूषण की उपाधियाँ प्राप्त कीं।[11] हृदयेशजी को अरबी, फारसी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं का ज्ञान है। हृदयेश जी सर्जक होने के साथ ही एक निष्ठावान् आलोचक भी हैं। इस समय हृदयेश जी कानपुर के गाँधी नगर मुहल्ले में रहते हैं।

हृदयेश जी ने सनेही जी से अपने सम्पर्क के विषय में बताया– "मैं सन् १९२४ से 'सुकवि' मासिक पत्रिका के माध्यम से सनेही जी से जुड़ा। तभी से मैंने 'सुकवि' में अपनी काव्य रचनाओं और आलोचनात्मक लेखों को प्रेषित करना प्रारम्भ कर दिया था।"[12]

काव्य-रचनाएँ

१–करुणा– इस रचना का प्रथम संस्करण संवत् १९९५ में हृदय-मन्दिर पब्लिशिंग हाउस गाँधीनगर, कानपुर से प्रकाशित हुआ। यह रचना खड़ी बोली में है, जिसमें करुण रस की धारा प्रवाहित है।

२–**कसक**– इसका प्रथम संस्करण संवत् १९९१ वि० में द आइडियल, लिटेररी, पब्लिशिंग हाउस कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस रचना में कवि के हृदय की करुण धारा प्रवाहित हुई है। यह भी रचना खड़ी बोली में है। इस रचना में भावों के अनुरूप रंगीन चित्र भी दिये गये है। इसमें प्रमुख भावपूर्ण रचनाओं के शीर्षक इस प्रकार हैं– अन्वेषण, वेदना से, लज्जा से, प्रेमाश्रु, आँसू, अज्ञात, झरने का, आत्म-संगीत, अशांति, सुरा-सुन्दरी, मृगमद बिन्दु उजड़ा हृदय देखो! उसे न छेड़ो!! उपालम्भ मेरी रानी अश्विनी

के जीवन चरित पर आधारित एक खण्ड-काव्य है, जिसमें प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के आपात् कालीन बीस सूत्री कार्यक्रमों का स्वर भी गुंजरित है। इस रचना में कुल नौ सर्ग है तथा इसकी रचना खड़ी बोली में हुई है।

हृदयेश जी की कविता विषयक मान्यताएँ सनेही-मण्डल के अन्य कवियों से अधिक मौलिक एवं व्यवस्थित हैं। उनकी दृष्टि में काव्य में विश्व की सूक्ष्म, सुकोमल एवं सौन्दर्य परक तत्त्वों का सन्निवेश होना चाहिए। उनके यह विचार छायावादी काव्यधारा के प्रभाव के कारण प्रस्फुटित हुए, जिनमें सौन्दर्य एवं प्रेम की सूक्ष्मता को रहस्यात्मक रूप में ग्रहण करने पर बल दिया गया है। हृदयेश जी की 'कसक', 'मधुरिमा' और 'सुषमा' रचनाओं में इन भावधाराओं का प्रवाह प्राप्त होता है। काव्य-प्रयोजन के अन्तर्गत हृदयेश जी की धारणा है कि राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ आध्यात्मिक सौन्दर्य एवं माधुर्य को भी समर्थन प्राप्त होना चाहिए। उपर्युक्त तीनों रचनाओं में हृदयेश जी की इन काव्य मान्यताओं का पल्लवन हुआ है। सनेही-मण्डल के आदर्श के अनुरूप ही हृदयेश जी ने भी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों को काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया। 'मधुरिमा' में उनकी ब्रजभाषा रचनाएँ संकलित है। उनकी शेष सभी रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। सनेही-मण्डल के कवियों की एक प्रमुख प्रवृत्ति उर्दू भाषा का प्रयोग भी है और इस दृष्टि से हृदयेश जी की 'कसक' रचना विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनकी 'जननायक' और 'मनोव्यथा' रचनाएँ सनेही मण्डलीय काव्यादर्श और प्रवृत्ति से पृथक् भाव भूमि पर आधृत हैं।

श्री प्रभुदयाल शर्मा 'अभिराम'– प्रभुदयाल शर्मा का जन्म श्रावण शुक्ल द्वितीय रविवार संवत् १९६० में कानपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम ज्योतिप्रसाद वाजपेयी था। अभिराम जी ने हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त की। सनेही-मण्डल के प्रमुख कवियों में अभिराम जी की भी गणना होती है।[13] सम्प्रति अभिराम जी कानपुर नगर के मनीराम बगिया मुहल्ले में निवास करते है।

काव्य रचनाएँ– १–**मुक्त-संगीत**– इस रचना का प्रकाशन रामसहाय पाण्डेय 'चन्द्र' कानपुर से हुआ। इसमें प्रकाशन-काल नहीं दिया गया है। यह रचना दो खण्डों में विभक्त है– पहला गीत-खण्ड और दूसरा कविता-खण्ड। गीत-खण्ड में विविध शीर्षकों के अन्तर्गत राग रागिनियों में रचित काव्य रचनाएँ हैं और कविता-खण्ड में विविध छन्द। यह रचना राष्ट्रीय भावना से संपोषित है। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर

इसकी रचना की गयी है। फलतः इसकी कविताओं में क्रान्तिकारी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण यह रचना सरकार द्वारा प्रतिबन्धित हो गयी थी।

२–**विजया**– इसका प्रथम संस्करण संवत् १९३८ में इंडियन प्रेस प्रयाग से हुआ। इस रचना में कवि ने 'विजयावाद' की परम्परा का निर्वाह करते हुए विजया की तरंगों का वर्णन किया है। इसमें संकलित कविताओं के शीर्षक इस प्रकार हैं– ताण्डव, विजया-विलास, विजया-गीता, विजया-शाला विजया-बाला, विजया का मतवाला, विजयोत्सव, विजया-गान, विजयोल्लास और चितवन।

यद्यपि अभिराम शर्मा की काव्य रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है, तथापि उनकी जो भी रचनाएँ है, उनमें सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों का पालन हुआ है। अभिराम जी की 'मुक्त-संगीत' का वर्ण्य-विषय सनेही-मण्डल के आदर्श के अनुरूप ही राष्ट्रीयता की भावना से संस्पर्शित होकर क्रान्तिकारी विचारों को अभिव्यक्त करता है। सनेही-मण्डल की 'विजयावाद' की काव्य प्रवृत्ति का पल्लवन अभिराम जी की विजया' रचना में हुआ है।

पं० देवीदयाल शुक्ल 'प्रणयेश'– प्रणयेश जी का जन्म संवत् १९६६ आषाढ़ कृष्ण ९ शनिवार को हुआ। इनके पिता पं० प्रभुदयाल शुक्ल ज्योतिष और व्याकरण के प्रकाण्ड पंडित थे। ये बाल्यकाल से कानपुर के निवासी थे। यद्यपि इनका जन्म फतेहपुर जनपद के जहानाबाद ग्राम मे हुआ था। प्रणयेश जी ने स्वाध्याय के बल पर कवित्व शक्ति अर्जित की। इनका व्यवसाय बच्चों को शिक्षा देना एवं व्यापारियों को उनके व्यापार मे सहायता प्रदान करना था। 'आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ' में प्रणयेश जी को सनेही-मण्डल के प्रमुख कवियों में स्थान दिया गया है।[14]

लगभग ५३ वर्ष की आयु में प्रणयेश जी का निधन कानपुर में हुआ।

काव्य रचनाएँ:–१. **निशीथिनी**–यह रचना सन् १९३३ में ओंकार कार्यालय कानपुर से प्रकाशित हुई। यह कवि के जीवन के प्रारम्भिक काल की रचनाओं का संग्रह है। इस संग्रह की कविताएँ खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में रचित हैं। इसमें संकलित कविताओं के शीर्षक इस प्रकार है–

खड़ी बोली की रचनायें–निशीथिनी की खड़ी बोली की कविताओं के शीर्षक निम्नलिखित हैं– लेखनी, गगन, पवन, सलिल, अनल, वसुन्धरा, प्रकृति-प्रिया, जिज्ञासा, प्राणधन ! आवेदन, आकर्षण, हे चितचोर ! प्रेमोद्गार वासन्ती अन्योक्ति जाह्नवी अरुणोदय प्रभात की लाली चाहना कैसा ? भगवान बुद्ध वीर-हृदय वीर का आन जीवन पथ

पर, फूलों की रानी, द्वार पर, मधुर-कहानी, मेरा-सुख, रजनि !, विश्व-वैचित्र्य, प्यास, प्रेमिका, ताजमहल, स्वागत, मजूरनी, साम्य भाव, अभिनेता से, अनन्त-संगीत और पंछी से।

ब्रजभाषा की रचनाएँ—इस संग्रह की ब्रजभाषा में रचित कविताओं के शीर्षक इस प्रकार हैं—अतीत-स्मृति, नर्तन-कौतुक, आँखें, बिकानी-सी, होली की मनुहार, शिवा की तलवार, शिवा का आतंक और वसन्त-सुषमा।

२. **कालिन्दी**—यह रचना रामदयाल प्रकाशचन्द्र, पब्लिशर्स, बुकसेलर्स एण्ड स्टेशनर्स चौक कानपुर से सन् १९३७ में प्रकाशित हुई। इसमें प्रणयेश जी की विभिन्न विषयों पर रचनाएँ संकलित हैं, परन्तु इसकी अधिकाश कविताएँ प्रेम और सौन्दर्य विषयक हैं। इस काव्य संग्रह के अन्त में संकलित 'चित्रलेखा' शीर्षक रचना पौराणिक कथानक पर आधारित है इस संग्रह की प्रमुख हृदयस्पर्शी कविताएँ इस प्रकार है– आँख मिचौनी, कैसी-प्रीति, बिखरे-फूल, नाविक से, पनघट पर, जीवन-गान, सहसा, उद्‌भ्रान्त, चित्रलेखा और आत्म-परिचय आदि। इस संग्रह की सभी कविताएँ खड़ी बोली में हैं।

३. **विजया विहार**—इसका प्रथम संस्करण संवत् १९९५ में रामदयाल प्रकाशचन्द्र चौक, कानपुर से प्रकाशित हुआ। अभिराम शर्मा के समान प्रणयेश शुक्ल जी ने इस रचना में 'विजयावाद' की परम्परा का अनुगमन किया है।

प्रणयेश जी की काव्य रचनाएँ सनेही-मण्डल के कवियों की काव्य मान्यताओं का अनुगमन करती हैं। काव्य-हेतु के सम्बन्ध में प्रणयेश जी ने काव्य की सुकोमलता को काव्य-हेतु के रूप में स्वीकार किया। फलतः उनकी 'निशीथिनी' और 'कालिन्दी' में सुकोमल एवं मृदु अनुभूतियों को स्वर प्राप्त हुआ है। सनेही-मण्डल की प्रमुख काव्य चेतना 'विजयावाद' का प्रस्फुटन प्रणयेश जी की 'विजया-विहार' रचना में दृष्टिगत होता है। प्रणयेश जी ने सनेही-मण्डल के भाषा विषयक काव्यादर्श के अनुरूप ही 'निशीथिनी' मे खड़ी वोली और ब्रजभाषा दोनों का प्रयोग किया है।

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'—तरल जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल एकादशी सवत् १९३७ में ग्राम साँडी जनपद हरदोई में पं० ब्रजकिशोर शुक्ल के घर मे हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा हरदोई में हुई। अध्ययन काल में तरल जी पर सगीत और उर्दू शायरी का संस्कार पड़ा। तरल जी को हिन्दी, उर्दू और फारसी का पर्याप्त ज्ञान था। अपने अध्ययनकाल के पश्चात् तरल जी कुछ समय राजनीति में क्रियाशील रहे। हरदोई से जब ये कानपुर आये, तो यहाँ रघुवरदयाल मिश्र के विद्यालय में हिन्दी शिक्षक नियुक्त हुए। अभी कुछ

दिनों पूर्व ही तरल जी का निधन हुआ है। निधन के पूर्व तरल जी कानपुर नगर के किदवई नगर मुहल्ले में रहते थे।

सन् १९३८ में पं० राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय-आत्मा' के माध्यम से तरल जी का सनेही जी से प्रथम सम्पर्क हुआ और तभी से उनकी रचनाएँ 'सुकवि' में स्थान प्राप्त करने लगीं।[15] तरल जी कुछ दिन तक 'सुकवि' के सहयोगी सम्पादक भी रहे।[16] तरल जी सनेही जी के प्रमुख शिष्यों में थे।[17]

काव्य रचनाएँ :—**प्रकाशित काव्य रचनाएँ**—तरल जी की निम्नलिखित प्रकाशित काव्य रचनाएँ हैं—

१. **मानव**—इसका प्रथम संस्करण संवत् १९४० में साहित्य निकेतन कानपुर से प्रकाशित हुआ। यह एक ओजपूर्ण भावनात्मक खण्ड-काव्य है। यह रचना खड़ी बोली में है तथा इसमें सवैया छन्द का प्रयोग हुआ।

२. **मेघमाला**—इस संग्रह का प्रथम संस्करण संवत् १९५२ में साहित्य निकेतन कानपुर से प्रकाशित हुआ। इस रचना पर छायावादी काव्य का संस्कार है। इस संग्रह की कविताओं में कवि की वैयक्तिक सूक्ष्म अशरीरी भावनाओं का सहज व्यजन हुआ है।

३. **मजदूर-जगत**—इस रचना का प्रकाशन सन् १९३९ में पं० कालिका प्रसाद मिश्र, विद्या निकुंज, कानपुर से हुआ। इसमें भारतीय शोषित मजदूरों के प्रति कवि की सहानुभूति व्यक्त हुई है। इसमें संकलित कविताएँ इस प्रकार हैं—क्रान्ति से, मजदूर का अस्तित्व, मजदूर का भविष्य, मजदूरनी, इधर और उधर, मजदूर-बाला, मजदूरों के बालक, मजदूर की होली, पीड़ित-निःश्वासे, ओ प्रलयंकर, विप्लवकारी, जाने क्या होने वाला है ? और बढ़े-चलो।

अप्रकाशित काव्य रचनाएँ—तरल जी की निम्नलिखित रचनाएँ अप्रकाशित हैं जिनका विवरण लेखक को तरल जी से प्राप्त हुआ।

१. **अन्तर्ध्वनि**—इस रचना में कवि के रोमानी गीतों का संग्रह हुआ है। सम्पूर्ण रचना में ८५ गीत संकलित हैं।

२. **यात्रा**—यह एक खण्ड-काव्य है, जो रूबाइयों में रचित है। इसकी रूबाइयाँ चौपदी के अन्तर्गत रची गयी हैं।

३. **चिन्तना**—घनाक्षरी और सवैया छन्दों में रचित यह एक दार्शनिक काव्य है, जिस पर औपनिषदिक विचारधारा का प्रभाव है।

सनेही-मण्डल के कवियों में तरल जी अपनी कारुणिक अनुभूतियों के कारण पृथक् स्थान रखते हैं। फलतः उन्होंने वेदना, निराशा एवं अकिंचनता को अपने काव्य का प्रमुख विषय बनाया है। तरल जी की दृष्टि में काव्य सृजन मानवीय अतृप्तावस्था का प्रस्फुटन है इसी आदर्श के अनुरूप उन्होंने

'मानव' और 'मेघमाला' की रचना की, जिनमें छायावादी सूक्ष्म, वायवी और मार्मिक अनुभूतियाँ पिरोई हुई हैं। तरल जी ने अपनी रचनाओं का सृजन सनेही-मण्डल के आदर्श के अनुरूप खड़ी बोली में किया। उन्होंने सनेही-मण्डल के प्रमुख छन्द घनाक्षरी और सवैया का प्रयोग अपनी 'मानव' एवं 'चिन्तना' रचनाओं में किया है।

किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर'–किशोर जी का जन्म कार्तिक कृष्ण ५ सवत् १९५६ वि० में कानपुर में हुआ। इनके पितामह लाला मातादीन बड़े धर्मनिष्ठ, गो ब्राह्मण सेवी एवं भगवतानुरागी थे। किशोर जी के पिता का नाम लाला ताराचन्द था। किशोर जी के अन्तर्मन में पारिवारिक संस्कारवश दया, दाक्षिण्य, आतिथ्य सत्कार आदि की भावनायें उनके स्वभाव की अंग बन गयी थीं। किशोर जी का निधन १२ अगस्त, १९७३ को हुआ।

आचार्य सनेही का जब सन् १९२१ में आगमन कानपुर हुआ, उस समय वे कानपुर में प्रसिद्ध समाज सेवक लाला फूलचन्द जैन के साथ में रहते थे। लाला फूलचन्द के माध्यम से ही किशोर जी का सनेही जी से सम्पर्क हुआ।[18] कुछ दिनों बाद यह सम्पर्क इतना प्रगाढ़ हो गया कि सनेही जी का किशोर जी का घर 'किशोर-कुञ्ज' ही स्थायी निवास सा बन गया। 'किशोर-कुञ्ज' पर ही सायंकाल कवि मण्डली एकत्रित होती थी और वहीं साहित्य चर्चा होती थी। सन् १९४० के लगभग आचार्य सनेही ने किशोर जी को कवि-दीक्षा दी।[19]

काव्य रचनाएँ–किशोर जी की काव्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है–

१. **नरसिंहावतार**–इसका प्रथम संस्करण संवत् १९९८ में किशोरचन्द्र कपूर, लाठी मोहाल कानपुर से प्रकाशिप हुआ। इसकी रचना दोहा छन्द में हुई है। इस रचना का मुख्य विषय भगवन्नाम स्मरण महिमापूर्ण प्रह्लाद की कथा है।

२. **व्रजचन्द्र-विनोद**–इस रचना का प्रथम संस्करण संवत् २०१९ में मोहनचन्द्र कपूर एडवोकेट द्वारा लाठी मोहाल, कानपुर से प्रकाशित हुआ। इसमें खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों का ही मिश्रण हुआ है। इस महा-काव्य का प्रमुख वर्ण्य-विषय दोहों के माध्यम से श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन चरित का वर्णन है। इस रचना के कथानक का आधार महाभारत और श्रीमद्भागवत है।

ऐसा भी ज्ञात हुआ कि किशोर जी ने कुछ 'ख्याल' भी रचे थे, किन्तु वे अनुपलब्ध हैं।[20] किशोर जी सनेही-मण्डल के साधारण कवियों में से थे।

अतः उनकी रचनाओं में सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों का व्यापक अनुगमन नहीं दृष्टिगत होता। 'ब्रजचन्द्र-विनोद' में अवश्य किशोर जी ने सनेही-मडल के आदर्श के अनुरूप व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का प्रयोग किया है।

वचनेश मिश्र—वचनेश जी का जन्म वैसाख शुक्ल ४ संवत् १९३२ में नौगांव, जिला हरदोई में हुआ। इनके पिता का नाम पं० पुत्तूलाल मिश्र था। वचनेश जी ने बिना गुरु के स्वाध्याय के बल पर पिंगल शास्त्र का गहन अध्ययन किया था। बाल्यकाल में इन्होंने 'भारत-हितैषी' नामक मासिक पत्र निकाला, जिसका मुख्य उद्देश्य नीति, शिक्षा, धर्म और कांग्रेसी सिद्धान्तों का प्रचार था। कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह ने वचनेश जी की काव्य प्रतिभा को देखकर सोलह वर्ष की अवस्था में ही वचनेश जी को कालाकांकर बुला लिया। उन्होंने वचनेश जी से छन्द शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। सन् १९०८ में राजा साहब से रुष्ट होकर वचनेश जी फर्रुखाबाद चले आये, परन्तु उनके निधनोपरान्त वे पुनः कालाकांकर आ गये। वचनेश जी का देहान्त संवत् २०१६ मे हुआ।

मार्च १९२४ में वचनेश जी ने फर्रुखाबाद से 'रसिक-पत्र' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस पत्र के कुछ अंक निकलने के पश्चात् ही सनेही जी ने उस पत्र को 'सुकवि' में सम्मिलित करने के लिए वचनेश जी से विवेदन किया। इसी समय से वचनेश जी ने अपनी रचनाओं को 'सुकवि' मे भेजना प्रारम्भ कर दिया।[21] मूलतः वचनेश जी सनेही जी के शिष्य न होकर वयानुसार उनसे आयु में बड़े थे और सनेही जी के सम्पर्क में आने तक स्वयं एक आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे, परन्तु सनेही जी से उनका निकट सम्बन्ध था। इसीलिए डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने वचनेश जी को सनेही-मण्डल के कवियों में स्थान दिया है।[22]

काव्य रचनाएँ—वचनेश जी की काव्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—**प्रकाशित काव्य रचनाएँ**—

१. **नीति-कुण्डल**—इसकी रचना सन् १८८५ में हुई। इसमें कवि के नीतिपरक सौ दोहे एवं रहिमन-शतक के कुछ दोहे सम्मिलित हैं।

२. **आनन्द-लहरी**—इसकी रचना सन् १८८७ में हुई। इसमें बीस-तीस सवैये हैं। इस रचना में लक्ष्मी और उमा के परिहास मूलक वार्तालाप हैं।

३ **मनोरंजिनी**—यह सन् १८८९ में रची गई। इस रचना का मुख्य विषय श्रृंगार एवं वैराग्य हैं, जिसमें पचास सवैयों का संग्रह है।

४. **वचनेश-शतक**—इसकी रचना सन् १८९२ में हुई। इसमें नीति और **धर्म सम्बन्धी सौ दोहे हैं**

५. **भारती-भूषण**–इसकी रचना सन् १८९३ में हुई। इसमें अलंकारों का विवेचन हुआ है।

६. **नवरत्न**–इसकी रचना सन् १९०६ में हुई। इसमें विविध वर्ण्य विषयों का समावेश हुआ है।

७. **धर्म-पताका**–इसमें गेय भजनों का संग्रह हुआ है।

८. **युग-भक्त**–इस रचना में ध्रुव और विदुर के भक्तिपरक आख्यान को काव्य का स्वरूप प्रदान किया गया है। इसमें घनाक्षरी छन्द का प्रयोग हुआ है।

९. **बजरंग बाल चरित्र**–वचनेश जी ने इस रचना में हनुमान के बाल चरित्र का वर्णन किया है।

१०. **शिव पार्वती विवाह**–इस रचना का वर्ण्य-विषय शृंगार है। यह रचना हरिगीतिका छन्द में रचित है। इसमें बारहमासा का वर्णन विशेष महत्त्वपूर्ण है।

११. **वचन विलास**–इस रचना में नीतिपरक दोहे और सवैये संकलित हैं।

१२. **गोपाल-हृदय**–यह रचना रामकुमार मिश्र 'मानस' हनुमत प्रेस, कालाकांकर से प्रकाशित हुई। इस रचना में प्रकाशन-काल नहीं दिया गया है। इसमें गद्य और पद्य दोनों के माध्यम से कृष्ण-लीला के विभिन्न उपादानों की दार्शनिक व्याख्या की गई है।

१३. **वैराग्य-शतक**–इसकी रचना सन् १९०५ में हुई। यह अप्पय दीक्षित कृत संस्कृत के 'वैराग्य-शतक' का हिन्दी अनुवाद है। यह अनुवाद दोहा और सोरठा छन्दों में रचा गया है।

१४. **वर्णाङ्ग-व्यवस्था**–इसकी रचना सन् १९०९ में हुई। इसमें वर्ण-व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

१५. **ध्रुव-चरित**–इसकी रचना सन् १९१४ में हुई। यह लावनी छन्द में रची गयी है तथा ध्रुव के पौराणिक आख्यान पर आधारित है।

१६. **विनोद**–यह रचना सन् १९२३ में रची गयी। इसमें वचनेश जी की परिहास मूलक रचनाओं का प्रथम स्फुट कविताओं का संग्रह हुआ है।

१७. **श्री शिव सुमरनी**–इसकी रचना सन् १९२४ में हुई। यह रचना शिव भक्ति से ओत-प्रोत है। इसमे घनाक्षरी, रेख्ता और गजल छन्दों का प्रयोग हुआ है।

१८. **श्याम सिर पीड़ा**–इस रचना में कृष्णलीला के भजन संकलित हैं।

१९. **परिहास**–इसकी रचना सन् १९५४ में हुई। यह वचनेश जी की अन्तिम प्रकाशित कृति है। इसमें घनाक्षरी और सवैया छन्दों का प्रयोग

हुआ है। इस रचना का विषय परिहास से सम्बद्ध है।

२०. **शान्त-समीर**--इस रचना का प्रकाशन काल संवत् १९९१ है। इसकी रचना खड़ी बोली में हुई है। इस रचना का मुख्य विषय प्रेम है।

२१. **शबरी**--इस रचना का प्रथम संस्करण संवत् १९९३ में रामकुमार मिश्र, विशारद, कालाकांकर से प्रकाशित हुआ। यह रचना व्रजभाषा के सवैया छन्द में रचित है। इसमें राम की अनन्य उपासिका तपस्विनी शबरी का चरित वर्णित हुआ है, जिस पर गाँधी जी के अछूतोद्धार के समसामयिक आन्दोलन का प्रभाव पड़ा है।

अप्रकाशित रचनाएँ-- १. **प्रणय-पत्रिका**--इस रचना में कृष्ण के प्रति सख्य भाव के गीत संकलित हैं।

२. **रूठा-भक्त**--इसमें रूठे हुए भक्त का भगवान श्रीकृष्ण से आत्म निवेदन वर्णित हुआ है।

३. **प्रणय**--इस रचना में भजनों का संग्रह है तथा इसकी रचना घनाक्षरी छन्द में हुई है।

४. **छन्दोगति**--इस रचना में छन्द की गति के सम्बन्ध में वचनेश जी के निजी आदर्शो को स्थान प्राप्त हुआ है।

वचनेश जी की अधिकांश रचनाओं में सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों का पालन हुआ है। वचनेश जी नेवात्सल्य को काव्य की आत्मा माना, परन्तु उन्होंने अपनी कोई रचना इस आदर्श के अनुरूप नहीं रची, जिससे वात्सल्य का रसराजत्व स्पष्ट हो सके। वचनेश जी की अधिकांश काव्य रचनाएँ ऐसी भी है, जिन पर सनेही-मण्डल के काव्यादर्श का कोई संस्कार नहीं दिखाई पड़ता है और ऐसी रचनाएँ कवि की मौलिक प्रतिभा को प्रमाणित करती हैं। इन रचनाओं में 'गोपाल-हृदय', 'ध्रुव-चरित', 'श्याम सिर पीड़ा' आदि भक्ति भाव पर आधारित हैं। छन्द वैविध्य की दृष्टि से वचनेश जी की रचनाएँ सनेही-मण्डलमे अद्वितीय है। सनेही-मण्डल के आदर्श के अनुरूप ही उन्होंने 'शबरी','परिहास' और 'युग-भक्त' में सवैया एवं घनाक्षरी छन्दों का ही प्रयोग किया है। सनेही-मण्डल के अन्य कवियों के समान ही वचनेश जी ने भी यदि 'शबरी' की रचना व्रजभाषा में की तो 'शान्त-समीर' की रचना खड़ी बोली। वचनेश जी ने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में काव्य रचनाएँ करके सनेही-मण्डल के काव्यादर्श का अनुगमन किया।

शिशुपाल सिंह 'शिशु'--शिशुपाल सिंह 'शिशु' इटावा के रहने वाले थे। शिशु जी सनेही जी के साथ कवि सम्मेलनों में प्राय भाग लिया करते थे। 'सुकवि' में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं- डॉ०

मिश्र 'निशंक' ने शिशुपाल सिंह 'शिशु' को भी सनेही-मण्डल के कवियों में स्थान दिया है।[२४]

काव्य रचनाएँ–शिशु जी की रचनाओं का विवरण इस प्रकार है–

१. **अपने पथ पर**–इस रचना का प्रथम संस्करण संवत् २००३ में मारवाड़ी नवयुवक मण्डल मारवाड़ी बाजार हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित हुआ। यह एक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य है। इसके कथानक का सम्बन्ध हिन्दू जाति के गौरव महाराणा प्रताप के चरित्र से है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं को नयी दृष्टि प्रदान की गयी है। यह रचना खडी बोली में रचित है।

२. **छोड़ो-हिन्दुस्तान**–इसका प्रथम संस्करण २६ जनवरी १९४६ ई० में मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, मारवाड़ी बाजार हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित हुआ। यह रचना कवि की गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित है। यह रचना समसामयिक असहयोग आन्दोलन के प्रचार और प्रसार के लिए रची गयी थी। इसकी रचना खड़ी बोली में हुई है।

३. **दो-चित्र**–इस रचना का प्रथम संस्करण संवत् २००३ में मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, मारवाड़ी बाजार, हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित हुआ। इस रचना में मानव समाज के आर्थिक वैषम्य का दो कथा चित्रों के माध्यम से वर्णन हुआ है। इसमें समता-विषमता, शोषक-शोषित और उच्च एवं निम्न वर्गों के संघर्षों का मार्मिक चित्रण हुआ है।

४. **परीक्षा**–इसका प्रथम संस्करण संवत् २००२ मे मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, मारवाड़ी बाजार हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित हुआ। यह एक खण्ड-काव्य है जिसमें शिवाजी की गुरुभक्ति सम्बन्धी कथानक को ग्रहण किया गया है।

५. **यमुना**–इस रचना का प्रथम संस्करण सन् १९३७ में पं० रामस्वरूप चतुर्वेदी इटावा ने प्रकाशित किया। इसमें यमुना माहात्म्य वर्णित हुआ है। यह रचना खड़ी बोली में रचित है।

६. **हल्दीघाटी की एक रात**–हल्दीघाटी की एक रात का प्रथम संस्करण संवत् २००२ में मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, मारवाड़ी बाजार, हैदराबाद (दक्षिण) से प्रकाशित हुआ। इस रचना में वीर केशरी महाराणाप्रताप का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना खड़ी बोली में हुई है।

शिशु जी की काव्य रचनाएँ वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से तो सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों का पालन अवश्य करती हैं, परन्तु शिल्प की दृष्टि से वे उससे भिन्न पड़ती हैं। काव्य का वर्ण्य-वस्तु तो शिशु जी ने सनेही-मण्डल के काव्यादर्शों के अनुरूप राष्ट्रीयता एवं अतीत गौरव गान को प्रमुखता से ग्रहण

किया, परन्तु व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों का काव्य भाषा के रूप में वरण न करके मात्र खड़ी बोली को ही स्वीकार किया। उन्होंने सनेही-मण्डल के छन्द॰ घनाक्षरी और सवैया को भी विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान न देकर विविध छन्दों में अपनी रचनाएँ रचीं।

द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'—रसिकेन्द्र जी जालौन के रहने वाले थे और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के बहनोई थे। रसिकेन्द्र जी की रचनाएँ भी 'सुकवि' में प्रकाशित होती थीं। रसिकेन्द्र जी सनेही-मण्डल के प्रमुख कवियों में से थे।[२४]

काव्य रचनाएँ—रसिकेन्द्र जी की काव्य रचनाओं का परिचय इस प्रकार है—

१. सती-सारन्धा—इस रचना का प्रथम संस्करण जून सन् १९२४ मे शिवनारायण मिश्र वैद्य, प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ। यह एक सचित्र ऐतिहासिक खण्ड-काव्य है, जिसमें मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'सती-सारन्धा' की कथा वस्तु को कविता का विषय बनाया गया है। इसकी रचना खड़ी बोली में हुई है।

२. बाल-विभूति—इस रचना का प्रकाशन संवत् २००९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से हुआ। यह एक बालोपयोगी साहित्य है। यह रचना सन् १९२४ के फरवरी मास में 'शिशु हितोत्सव कमेटी' उरई के प्रमुख श्री युत मास्टर एस० पी० शाह जिलाधीश के अनुरोध पर रची गयी।

३. मनहर-वीर-ज्योति—इस रचना का द्वितीय संस्करण संवत् १९९५ में रसिकेन्द्र पुस्तकालय कालपी से प्रकाशित हुआ। कवि की यह रचना राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित वीरता, राष्ट्रप्रेम और सुप्त हृदय को जागृत करने की भावना से परिपूरित है।

४. हरि-जन्म—इस रचना को संवत् १९८६ मे पं० जगदेव पाण्डेय ने मुंगेर से प्रकाशित की। इसकी रचना कथावाचक राधेश्याम रामायण की लय पर की गई है, जिसमें कृष्ण का जन्म प्रसंग वर्णित हुआ है। इस रचना में बीच-बीच में दादरा-गीत भी हैं।

५. आत्मार्पण—इसकी रचना सन् १९१९ मे हुई। यह एक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य है। इस रचना में कुल पाँच सर्ग हैं। नारी गरिमा से सम्बद्ध इस रचना में राणा राजसिंह के शौर्य का वर्णन हुआ है। इसकी रचना पीयूषवर्षक छन्द में हुई है।

रसिकेन्द्र जी की काव्य रचनाओं के अन्तर्गत 'सती-सारन्धा' मनहर-वीर-ज्योति और आत्मार्पण' पर सनेही-मण्डल के काव्यादर्श का प्रभाव

लक्षित होता है, क्योंकि इन रचनाओं के वर्ण्य-विषय क्रमशः राष्ट्रीयता और अतीत गौरव से सम्बद्ध हैं। परन्तु कवि की 'बाल-विभूति' और 'हरि-जन्म' की रचना-सनेही-मंडल के आदर्श के अनुरूप नहीं हो सकी है।

लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'—लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' का जन्म कार्तिक कृष्ण ४ संवत् १९७५ में ग्राम भगवन्तनगर जनपद हरदोई में पं० रामशंकर मिश्र के घर हुआ। मिश्र जी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में ही हुई और कॉलेज की शिक्षा इन्होंने कानपुर में प्राप्त की। निशंक जी के काव्य सृजन पर सनेही जी के अतिरिक्त करुणेश और कमलेश का भी प्रभाव लक्षित होता है। सम्प्रति निशंक जी लखनऊ में रहते हुए सनेही जी की पुण्य-स्मृति मे 'सुकवि-विनोद' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं। इस पत्रिका की सामग्री 'सुकवि' के ही समान विविध काव्यांगों से सुसज्जित रहती है तथा इसकी सम्पादन शैली भी 'सुकवि' से प्रभावित है।

सन् १९३९ में मौरावाँ के अखिल भारतीय कवि सम्मेलन में सनेही जी से निशंक जी का प्रथम सम्पर्क हुआ। उस कवि सम्मेलन के संचालक सनेही जी तथा अध्यक्ष लाला प्रयागनारायण थे। मौरावाँ के निवासी स्वर्गीय श्री डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित निशंक जी के सहपाठी थे। उन्होंने निमन्त्रण भेजकर निशंक जी को कवि सम्मेलन में आमन्त्रित किया था। उसी कवि सम्मेलन में अन्य कवियों के मध्य सनेही जी से निशंक जी का प्रथम सम्पर्क हुआ।[85]

काव्य रचनाएँ—निशंक जी की काव्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

१. **प्रेम-पीयूष**—इस रचना का प्रथम संस्करण सन् १९७१ में आलोक मिश्र वार्डेन-निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ। निशंक जी की यह रचना व्रजभाषा में है और रत्नाकर के उद्धव-शतक की भावभूमि पर आधारित है। सम्पूर्ण रचना १०८ छन्दों में पूरी हुई है।

२. **सिद्धार्थ का गृह त्याग**—इसका प्रथम संस्करण सन् १९५० में मालवीय पुस्तक अमीनाबाद लखनऊ से प्रकाशित हुआ। यह एक खण्ड-काव्य है, जिसमें गौतम बुद्ध का चरित्र वर्णित हुआ है।

३. **शतदल**—इस रचना का प्रथम संस्करण सन् १९५२ मे प्रकाशित हुआ। यह निशंक जी की स्फुट कविताओं का संग्रह है।

४. **क्रान्ति-दूत**—इसका प्रथम संस्करण सन् १९७२ में मुकुल मिश्र वार्डेन-निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इसमें वीर सेनानी राना बेनीमाधव के वीरतापूर्ण चरित्र को काव्य का विषय बनाया

गया है ।

५. **जय भरत**–इस रचना का द्वितीय संस्करण सन् १९७६ में आलोक मिश्र वार्डेन-निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ । यह एक खण्ड-काव्य है, जिसमें तपस्वी भरत का पावन चरित्र वर्णित हुआ है ।

६. **साधना का स्वर**–इसका प्रथम संस्करण अक्टूबर सन् १९७६ मे अनिल मिश्र वार्डेन-निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ । यह निशंक जी के गीतों का संग्रह है जिसमें उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति मिली है ।

७. **अनुपमा**–इस रचना का प्रथम संस्करण अक्टूबर सन् १९७७ मे अनिल मिश्र वार्डेन–निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ । इसमें स्फुट विषय गृहीत हुए हैं । यह रचना खड़ी बोली मे कवित्त और सवैया छन्दों में रचित है ।

८. **शान्ति-दूत**–इस रचना का प्रथम संस्करण भी अक्टूबर सन् १९७७ में आलोक मिश्र वार्डेन–निवास श्री जयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ से प्रकाशित हुआ । इस रचना में गौतम बुद्ध की गौरवमयी गाथा को काव्य विषय के रूप में ग्रहण किया गया है ।

निशंक जी की प्रायः सभी काव्य रचनाएँ सनेही-मण्डल के काव्यादर्शो के अनुरूप हैं । उनकी प्रेम एवं श्रृंगार परक रचनाओं में 'प्रेम-पीयूष', 'साधना के स्वर' और अनुपमा' तथा राष्ट्रीय विषयों से सम्बद्ध रचनाओं में 'क्रान्ति-दूत', 'शान्ति-दूत' आदि रचनाओं को परिगणित किया जा सकता है । निशक जी ने ब्रजभाषा का प्रयोग 'प्रेम-पीयूष' में और खड़ी बोली सवैयों का प्रयोग 'अनुपमा' में करके सनेही-मण्डल की काव्यभाषा के आदर्श का पालन किया है । निशंक जी की धारणा है कि सूक्ष्म अनुभूति ही कवि को काव्य सृजन के लिए तत्पर करती है, इसका स्पष्ट अनुगमन उनकी 'साधना के स्वर' और 'अनुपमा' रचनाओं में हुआ है, जहाँ कवि की मार्मिक अनुभूतियाँ प्रभावी रूप में संवेद्य बन गई है ।

सनेही-मण्डल के कवियों की पत्रकारिता–सनेही-मण्डल के कुछ कवियो का ध्यान पत्रकारिता की ओर भी गया । इस दिशा में स्वयं सनेही जी अग्रणी कहे जा सकते हैं । सनेही जी के अतिरिक्त पं० अनूप शर्मा, वचनेश मिश्र और डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

कवि–सनेही जी ने गोरखपुर से सवत् १९८१ माघ मास मे कवि'

नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उन्होंने पहले उन्नाव में और उसके बाद कानपुर में रहकर 'कवि' का सम्पादन किया। सनेही जी ने इस पत्र के द्वारा भी देश के अनेक कवियों को काव्य के एक मंच पर संगठित करने का उपक्रम किया। इस पत्र का प्रकाशन वे 'त्रिशूल' उपनाम से करते थे। यह समस्यापूर्ति प्रधान पत्र था।

सुकवि—सनेही जी ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा प्राप्त कर सन् १९२८ में कानपुर में 'सुकवि-प्रेस' की स्थापना करके अप्रैल मास से सुकवि' मासिक पत्र का प्रथम अंक प्रकाशित किया। इस पत्र का मोटो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा इस प्रकार लिखा गया था—

"लोकोत्तरानन्द के दाता, धाता स्वीय सृष्टि के आप।
धन्य कृती कवियों का कौशल, धन्य अमृतवर्षी आलाप॥[26]

'सुकवि' कानपुर से प्रकाशित होता था और बाइस वर्षों तक इसका प्रकाशन हुआ। जब सनेही जी सन् १९५१ में कानपुर से अपने ग्राम हड़हा (उन्नाव) वापस आ गये, तो इसका प्रकाशन बन्द हो गया। सनेही जी ने 'सुकवि' का सम्पादन कर अपने मण्डल के कवियों का निर्माण एवं संगठन कर हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके 'सुकवि' का सनेही-मण्डल के कवियों के निर्माण में विशेष योगदान रहा है। इस पत्र के माध्यम से सनेही जी ने भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों के कवियों को एक भाव सूत्र में पिरोने का कार्य सम्पन्न किया। 'सुकवि' के 'समस्यापूर्ति' स्तम्भ में भारत के विभिन्न क्षेत्रों से कवियों की पूर्तियाँ आती थीं और प्रकाशित होती थीं। इस पत्र का वार्षिक मूल्य तीन रुपया और एक प्रति का पाँच आना था। 'सुकवि' का प्रकाशन श्री शंभुदयाल गुप्त सुकवि प्रेस, फीलखाना कानपुर से होता था। इस पत्र के प्रमुख स्तम्भ काव्य-कुञ्ज, समस्यापूर्तियाँ, गुदगुदी और समालोचना थे।

कवीन्द्र—स्वामी नारायणानन्द सरस्वती ने कानपुर से सम्वत् १९८१ के वैसाख मास में 'कवीन्द्र' नामक एक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसके सहायक संपादक पं० अनूप शर्मा थे। इस पत्रिका को सनेही जी का विशेष सहयोग प्राप्त था। कुछ समय के बाद 'कवि' और 'कवीन्द्र' दोनों का प्रकाशन बन्द हो गया।

भारत-हितैषी—इस पत्र का सम्पादन अपने बाल्यकाल में ही आचार्य वचनेश मिश्र ने प्रारम्भ किया था। इस पत्र का मुख्य विषय नीति, शिक्षा, धर्म और कांग्रेसी सिद्धान्तों का प्रचार था।

सम्राट—यह पत्र कालाकांकर से प्रकाशित होता था। २९ फरवरी

सन् १९०९ को राजा रामपाल सिंह के निधनोपरान्त कालाकांकर से वचनेश मिश्र ने 'सम्राट' का सम्पादन भार स्वीकार किया था।

सुकवि-विनोद—'सुकवि' पत्र की परम्परा को विकसित करने के लिए सन् १९७२ में पं० नारायण चतुर्वेदी ने 'सुकवि-साहित्य-परिषद्' की स्थापना की। उन्होंने इस परिषद के तत्त्वावधान में सनेही जी की पुण्य स्मृति मे 'सुकवि-विनोद' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्रिका अभी भी प्रकाशित हो रही है। इसके सम्पादक सनेही-मण्डल के कवि डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' हैं। 'सुकवि-विनोद' का संपादन 'सुकवि' की संपादन शैली पर हो रहा है। 'सुकवि' के समान इसमें भी 'समस्यापूर्ति' का एक स्थायी स्तम्भ रहता है तथा सनेही जी और सनेही-मण्डल की काव्य परम्परा को जीवित रखने वाले अधिकांश कवि ही प्राय इसमें अपनी रचनाएँ भेजते हैं। 'सुकवि-विनोद' के अवलोकन मात्र से सनेही जी के 'सुकवि' की स्मृति जागृत हो जाती है। इस प्रकार सनेही जी के 'सुकवि' की परम्परा आज 'सुकवि-विनोद' में सुरक्षित है। इस पत्र के मुख पृष्ठ पर छपा रहता है—"सनेही जी की पुण्य स्मृति में।" सुकवि-विनोद' का वार्षिक मूल्य इस समय पन्द्रह रुपये और एक प्रति का मूल्य रु० १.५० है। इसका प्रकाशन 'सुकवि साहित्य परिषद लखनऊ' से होता है। इस पत्रिका के स्थायी स्तम्भ सम्पादकीय और समस्यापूर्तियाँ हैं।

वस्तुतः सनेही-मण्डल के कवियों की पत्रकारिता में 'कवि', 'सुकवि' और 'सुकवि-विनोद' में ही मण्डलीय पत्रकारिता की चेतना पल्लवित होती रही है। शेष पत्रिकाओं में सनेही-मण्डल की काव्य चेतना का पल्लवन नहीं दिखाई पड़ता। 'समस्यापूर्ति' स्तम्भ के माध्यम से 'कवि', 'सुकवि' और 'सुकवि-विनोद' के उद्देश्य में जो सामूहिक एकता दृष्टिगत होती है, वह मण्डलीय पत्रकारिता की दिशा को नवीन आयाम प्रदान करती है। मूलतः सनेही जी का उद्देश्य समस्यापूर्ति के माध्यम से विविध कवियों को एक मंच पर लाना था।

सन्दर्भ

1. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, १९३३ नवम्बर, पृ. १
2. यह विवरण मुझे कानपुर के कृष्णबिहारी शुक्ल 'प्रभात' से प्राप्त हुआ।
3. श्री श त्रिपाठी सनेही अभिनन्दन ग्रंथ, पृ ५

४. सत्यव्रत शर्मा अजेय : महामनीषी, जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. १३–१४।
५. वही, पृ. ८१।
६. उपरिवत्, पृ. ८१।
७. उपरिवत् पृ. ८२।
८. उपरिवत्।
९. उपरिवत् पृ. ८३
१०. डॉ० प्रेमनारायण टण्डन : रसवन्ती, श्री अनूपशर्मा अभिनन्दनांक, पृ. १२०
११. मुझे यह विवरण स्वयं कवि से साक्षात्कार के द्वारा प्राप्त हुआ।
१२. उपरिवत्।
१३. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. २६२
१४. वही
१५. यह विवरण लेखक को तरल जी से वार्तालाप के द्वारा प्राप्त हुआ।
१६. उपरिवत्
१७. श्री शम्भूरत्न त्रिपाठी : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. ५२
१८. पं० अयोध्यानाथ शर्मा : व्रजचन्द्र-विनोद, पूर्वार्द्ध, पृ. ६
१९. उपरिवत्, पृ. ६–७
२०. यह विवरण मुझे किशोर जी के पुत्र श्री मदनचन्द्र कपूर से प्राप्त हुआ।
२१. ब्रह्मदत्त दीक्षित : वचनेश अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. ८
२२. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. २६२
२३. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रंथ पृ. २६२
२४. वही
२५. यह विवरण लेखक को लखनऊ में निशंक जी से प्राप्त हुआ।
२६. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही : सुकवि, १९३३, नवम्बर, पृ. १

४

सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य का वस्तु-पक्ष

सनेही-मण्डल के काव्य में परम्परित मध्ययुगीन काव्य विषयों के साथ अपने निकट पूर्ववर्ती भारतेन्दु और द्विवेदी-युग के काव्य विषयों का समाहार दृष्टिगत होता है। साथ ही सनेही-मण्डल के काव्य में उसकी समसामयिक छायावादी और प्रगतिवादी काव्यधाराओं के वस्तु-पक्ष का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से सनेही-मण्डल के काव्य के वस्तु-पक्ष का विवेचन परम्परित और नवीन काव्य विषयों के अन्तर्गत करना समीचीन होगा।

परम्परित काव्य-विषय

दार्शनिक-विचारधारा— सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में निर्गुण भावना के तन्तुओं का समाहार मिलता है। उनकी भक्ति प्रधान अनेक अभिव्यक्तियों मे परम्परित अद्वैत भावना का संस्कार दिखाई पड़ता है। सनेही जी इस भावधारा को ईश्वर के प्रति अपनी समर्पण भावना की अभिव्यक्ति करते हुए कहते है—

"नज़र बचाते हुए आँखें यों चुराते हुए,
छिप कर आप किस दिल में समायेंगे ?
सेवक सरल मैं हूँ, सरल हृदय आप
हृदय में कैसे कोई कुटिल बसायेंगे ?
आश्रयविहीन को उदारमना अपनाते,
सहृदय आप कैसे वज्र बन जायेंगे ?
छोड़कर सब को हुआ हूँ, आप ही का जब,
अब भी 'सनेही' क्या न आप अपनायेंगे ?"[1]

संसार में जीव की स्थिति जीवन तथा मृत्यु है। अनूप शर्मा ने संसार विषयक इस दार्शनिक जिज्ञासा को शतरंज के खेल से सृष्टि की एकरूपता सिद्ध करते हुए कहा कि शतरंज के गोटो के समान सभी जीव अपना कर्म (क्रीडा) समाप्त कर पुन: सब एक स्थल पर एकत्रित हो जायेंगे। इन जीव

रूपी गोटों को विभिन्न स्थलों पर रखने वाला परमात्मा है, जो उसे इच्छा-नुसार नचा रहा है–

"अहर्निशा की शतरंज है बिछी, नरेश प्यादे सब खेल वस्तु हैं,
गये चलाये कुछ देर के लिए इकट्ठे फिर ठौर में ।।"[2]

उस परमात्मा रूपी प्रियतम की प्राप्ति भी सहज सम्भव नहीं है। उसको प्राप्त करने के लिए कठिन तप की आवश्यकता है। वह अगम्य और अगोचर कहा गया है। जीव ब्रह्म के अन्वेषण के लिये लक्ष-लक्ष प्रयत्न करता है, परन्तु ब्रह्म (प्रियतम) को प्राप्त करने में उसे पता नहीं कहाँ-कहाँ भ्रम व्याप्त है। सारे विश्व में वह भ्रमण कर आता है, परन्तु ब्रह्म की प्राप्ति उसे नहीं हो पाती। इसी भाव को हृदयेश जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

"तुझे मैं खोज-खोज कर हारा।
मिला न तू जब श्रान्त-क्लान्त,
बैठ रहा मन मारा।।

सन्ध्या के नीरव निर्जन में, गिरि-सरि-सर-निर्झर-कानन में, राका-शशि के मृदुल हास में, सिन्धु-वीचि के वर विलास में; अवनि और अम्बर सब खोजा पर मिला न तू प्यारा।"[3]

सन्तों और दार्शनिकों ने सृष्टि के सम्बन्ध में अनेक जिज्ञासायें प्रकट की है। इस विश्व में कब, किससे और कैसा सम्बन्ध जुड़ता है, यह किसी को ज्ञात नहीं। प्रणयेश जी इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

"किस किस का है, किस-किस से अटूट नाता,
इस बात को बिरला ही जान पाता।
वन श्री बिखरती न देर लगती है ज्यों ही,
आगम समय ऋतुराज का सुहाता है।"[4]

वचनेश मिश्र भी सन्त कवियों के समान सम्पूर्ण विश्व को ब्रह्म के प्रकाश से प्रकाशित मानते है। उनकी दृष्टि में ब्रह्म के प्रकाश से ही ससि, भानु एवं नक्षत्रावलियाँ भासित हैं, विश्व के जड़ जंगम का विकास ही ब्रह्म की महाछवि है। अतएव ब्रह्म की माया से यह समस्त विश्व विमोहित हो रहा है।[5]

सनेही-मण्डल के 'रसिकेन्द्र' ने राम-नाम की महत्ता पर प्रकाश डाला है उनकी दृष्टि में नाम शक्ति के सम्मुख समस्त शक्तियाँ नत हो जाती हैं। यथा

"भूपों के प्रभुत्व का प्रभाव क्या पड़ेगा जब,
मन में समाई प्रभुता है सुख धाम की।
'रसिकेन्द्र' दाम, दण्ड, भेद की बिसात क्या है ?
प्राप्त हैं अष्ट-सिद्धि जब सत्य साम की।
क्रोध कर लेगा, प्रतिशोध क्या 'विरोध' जब-
प्रिय है परीक्षा पूर्ण प्रेम परिणाम की।
सत्ता पातकों की क्यों न पत्ता सी उड़ेगी ? जब–
ध्यान में हमारे है महत्ता नाम नाम की ॥"[6]

ईश्वर महिमा और निर्गुण चेतना मूलक इस प्रकार की स्फुट अभिव्यक्तियाँ सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में यत्र-तत्र देखी जा सकती हैं।

दैन्य-भाव– सगुण भक्त कवियों ने अपने आराध्य देव के सम्मुख दैन्य भावना का प्रदर्शन करते हुए ईश्वर की कृपालुता एवं उदारता का अनेक प्रकार से कथन किया है, जिससे प्रभु उसके कार्पण्य भाव को देखकर भक्त के दोषों को क्षमा करके अपने शरण में ले लें। भक्तों के समान सनेही-मण्डल के कवियों ने भी प्रभु की महिमा का गान करते हुए आत्म समर्पण किया है। हृदयेश जी का भी स्वर कुछ इसी प्रकार है–

"कैसे भाव अपार खोल सकते जी मे भरे सैकड़ों,
वाणी में वह शक्ति है न, उसकी जो गा सके कीर्ति को॥
होने से जग जन्म पूर्व, उसने मातृ स्तनों को रचा।
देखो तो ! इससे असीम उसकी प्रत्यक्ष होती दया॥"[7]

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' भी मानव की असमर्थता पर विचार करते हुए कहते हैं कि मनुष्य का जीवन दुख-दैन्य से पूर्ण है और अस्थिरता से युक्त मनुष्य का जीवन विनाश की ओर अग्रसर है। यद्यपि मानव यह जानता है कि विश्व की सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं, तथापि वह ऐश्वर्य के गर्व से दिग्भ्रमित होकर आशा के पाश में बंधा हुआ है।[8]

कृष्ण-काव्य– सनेही-मण्डल के काव्य में कृष्ण-काव्य परम्परा का भी सम्यक् निर्वाह हुआ है। सनेही-मण्डल के कवियों ने कृष्ण चरित के विविध मनोरम प्रसंगों को काव्य-विषय के रूप में ग्रहण किया। सनेही जी के कृष्ण-चरित्र सम्बन्धी कई कवित्त बड़े सरसपूर्ण एवं भक्ति भाव से ओत-प्रोत हैं। इस प्रसंग में उन्होंने करुण रस के प्रति अपनी विशेष रुचि दिखाई है। सनेही जी के काव्य में कृष्ण-चरित के अन्तर्गत कृष्ण की शृंगार लीलाओं का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन ही प्रधान रूप से गृहीत हुआ है। गोपी के पूर्वानुराग का एक छन्द उद्धरणीय है–

"सुन सुन सखि ! घनश्याम की गुणावली,
उर वाटिका में लालसा की लता लहकी।
एक दिन तरणि तनूजा तीर जाती थी,
आ गये अचानक वे आँखें चार हो गयीं।
किन्तु क्या बताऊँ, दई मारी इन आँखे ने,
होकर सजल जल-चादर सी तान दी।
रूप सिन्धु जी भर मुझे न देखने दिया,
छिपके पलक में पुलक तन में भरी।"[9]

सनेही जी ने कई सवैयों में कृष्ण-लीला के मनोहारी प्रसंगों को अभिव्यक्त किया है। सनेही जी के काव्य में नवयुग के अनुरूप कृष्ण चरित को नूतन परिवेश भी प्राप्त हुआ है। 'हरिऔध' आदि कवियों के समान सनेही जी ने भी कृष्ण के लोकरंजक रूप की अपेक्षा उनके लोकरक्षक रूप को ग्रहण किया। वे अपनी अनेक कविताओं में कृष्ण-चरित के माध्यम से जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिए सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं।[10] उनके कृष्ण परक काव्य में परम्परित कृष्ण-चरित में आधुनिक संस्कारों का समाहार मिलता है।

पं० अनूप शर्मा के काव्य में भी कृष्ण-चरित वर्णित हुआ है। उनका 'फेरि-मिलिबो' चम्पूकाव्य कृष्ण-काव्य परम्परा में एक नवीन प्रयोग कहा जा सकता है। जहाँ पूर्ववर्ती कवियों की दृष्टि कृष्ण-काव्य सृजन में संयोग से वियोग की ओर रही, वहाँ अनूप जी की दृष्टि 'फेरि-मिलिबो' रचना मे वियोग से संयोग की ओर उन्मुख रही है। राधा के अपूर्व एवं अनिंद्य सौन्दर्य वर्णन में अनूप जी की वचन विदग्धता द्रष्टव्य है—

"ज्यों ज्यों राधा कछुक रूप नियरे चलि देखौं।
असमंजस जिय होत अहर किन आंखिन पेखौं।
सबसों सुन्दर नयन, लखनि वाहू तैं सुन्दर।
सबसों सुन्दर वदन, वचन वाहू तैं सुन्दर।
सबसों सुन्दर सुछवि, कांति वाहू तैं सुन्दर।
सबसों सुन्दर हिय, सांति वाहू तैं सुन्दर।
मुख रजनी को चन्द्र, प्रात को उदित सितारो।
लसत मुदित ज्यों भानु सिसिर के अम्बर वारो।।"[11]

कृष्ण-काव्य परम्परा मे भ्रमर-गीत का प्रसंग अपनी सरसता एव मार्मिकता के लिए विख्यात रहा है। सनेही-मण्डल के कवियों ने इसे भी अपने काव्य का विषय बनाया प्रणयेश शुक्ल ऊधो-गोपी प्रसग मे गोपियों

के निष्कपट प्रेम का वर्णन करते हुए कहते हैं– गोपियों का प्रेम दृढ़ है, वनमाला, पीताम्बर एवं लकुटि को धारण करके वन-वन जाकर गोचारण कर लेंगी और पीयूषवर्षी बंशी को निनादित कर अपना समय काट लेंगी परन्तु अगोचर ब्रह्म का ध्यान उनसे असम्भव है–

"ऊधो यह सूधो सौं सन्देश कहि दीजौ जाय,
गुनन गोविन्द ही के नीके गहि गैहौं मैं।
कहै 'प्रणयेश' जो न आये तौ भयो है कहा,
रूप उन ही को कैं न बानि बिसरैहौं मैं।
धरि वनमाल औ पीताम्बर, लकुटि लीन्हें,
बन-बन जाय धाय गायन चरैहौं मैं।
उर उमगावनि, सनेह सरसावनि वा–
सुधा बरसावनि लै बांसुरी बजैहौं मैं ॥'[13]

वस्तुत: सनेही-मण्डल के कवियों ने कृष्ण-काव्य परम्परा के प्राय: स्फुट सन्दर्भों को काव्य-विषय के रूप में ग्रहण किया, जिसमें भक्ति-काल से लेकर आधुनिक-काल तक के कृष्ण-काव्य परम्परा के अनेक आयाम उद्घाटित हुए हैं। परन्तु सनेही-मण्डल के काव्य में वर्णित कृष्ण-चरित पर भक्ति काल की अपेक्षा रीतिकालीन संस्कार अधिक प्रखर है। सनेही-मण्डल के कवियो ने कृष्ण-काव्य की परम्परित भाषा ब्रजभाषा के साथ-साथ कृष्ण चरित के खड़ी बोली में भी प्रवेश किया। इस दृष्टि से वे द्विवेदी-मण्डल के कवियो के निकट हैं।

काव्यानुवाद– सनेही-मण्डल के कवियों ने काव्यानुवाद के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। इस दिशा में मात्र सनेही जी का ही अल्प प्रयास दृष्टिगत होता है। सन् १९१२ से १९१६ की अवधि तक साहित्य संसार मे 'गीतांजलि' की विशेष धूम रही। कानपुर के प्रताप-प्रेस से गद्य में गीतांजलि का एक अनुवाद प्रकाशित हुआ। सनेही जी ने भी रवीन्द्र की गीतांजलि के कुल पाँच गीतों का काव्यानुवाद किया, जिनका प्रकाशन 'प्रताप' पत्र मे हुआ। तदनन्तर गीतांजलि के गीतों के इन काव्यानुवादों को सनेही जी ने अपनी रचना 'राष्ट्रीय-वीणा' में स्थान दिया। इन कविताओं के शीर्षक हैं– मंगल-कामना, याचना, अन्य प्रेम, ईश्वरावाहन और देवालय।

राम-काव्य– सनेही-मण्डल के कवियों ने राम-काव्य के प्रणयन में भी योग दिया। सनेही जी ने अपनी करुण रस प्रधान रचना 'करुणा-कादम्बिनी' में राम कथा के कौशल्या-विलाप लक्ष्मण शक्ति अशोक वाटिका में सीता का शोक और श्रवण-शोक प्रसगों को ग्रहण किया राम कथा के ये सभी

प्रसंग करुण रस की धारा को प्रवहमान करते हैं। इस रचना की 'कौशल्या-क्रन्दन' कविता में सनेही जी ने मातृ हृदय की गहन अनुभूतियों का मार्मिक अंकन किया है।[13] 'अशोक वन में सीता' कविता में पति वियोगिनी सीता की पीड़ा मुखरित हो उठी है–

"अहिल्या जिस चरण रज से तरी थी, सदा जिसके लिए शबरी मरी थी।
सरसता पुष्प की जिसमें भरी थी, जिसे पा के हृदय लतिका हरी थी॥
उसी को चाहती हैं नाथ आँखें, नहीं बरुणी पसारे हाथ आँखें।
रुधिर रोते बहुत उकता चुकी हूँ, सजा मृग-मोह की मैं पा चुकी हूँ।"[14]

अनूप शर्मा का भी ध्यान राम-काव्य प्रणयन की ओर गया। उनकी 'अग्नि-पथ' रचना में राम कथा के राम-रावण युद्ध के अन्तिम दिनों का वर्णन हुआ है। इस रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें चिक्षुर नामक सेनापति अपनी नवविवाहिता पत्नी को घर में छोड़कर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है। सरमा से यह वृतान्त सुनकर जानकी का करुण हृदय झंकृत हो उठता है–

"कौन धैर्य धरा सकेगा, नवविवाहिता नारि को ?
सखि ! बता तू ने लखा होगा वधू सुकुमारि को,
हाय ! मैं भी दह रही हूँ पति विरह संताप में,
जानकी ने प्रश्न किया सरमा से परिताप में॥"[15]

सनेही-मण्डल के कवि प्रणयेश शुक्ल ने राम के पूर्वज राजा दिलीप के चरित्र को वर्णित किया।[16]

बचनेश मिश्र की 'शबरी' रचना राम-काव्य परम्परा को एक नवीन दृष्टि प्रदान करती है। इस रचना में कवि ने शबरी की राम मिलन हेतु प्रतीक्षा का मार्मिक चित्रांकन किया है। शबरी की राम भक्ति का एक चित्रांकन द्रष्टव्य है–

"इक मूरति मानस मैं प्रिय की नित साँसन में दुलरायो करै।
कबहूँ धरि हाथ सुवायो करै, कबहूँ गुन गाय जगायो करै।
अन्हवायो करै अंसुवान हिये की हिलोर हिंडोर झुलायो करै।
निज बेदना बीर के संग कबौं, विनती करि ताहि मनायो करै॥"[17]

डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने रामकाव्य परम्परा के अन्तर्गत 'जय-भरत' की रचना कर भरत चरित को प्रधानता दी। राम की चरण पादुका के प्रति भरत की श्रद्धा भावना को निशंक जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

"इसका दिव्य प्रकाश मोह तम सदा हरेगा।
इसका शुभ आदर्श देश कल्याण करेगा।
ये दोनों शुभ वर्ण सदृश हैं राम नाम के।
ज्ञान भक्ति मय, दाता हैं ये परम धाम के ॥"[18]

स प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने रामचरित को काव्य-विषय र ब्रजभाषा के साथ खड़ी बोली में भी राम-काव्य की रचना परम्परा कसित किया।

ृंगार-काव्य–सनेही-मन्डल श्रृंगार-काव्य परम्परा का भी पोषक बना। जी का काव्य तो पूर्णतः रस काव्य है। सनेही जी का श्रृंगार-काव्य रकीया निष्ठ स्वच्छन्द प्रेम की परम्परा पर आधारित है। सनेही र और फारसी के मर्मज्ञ थे। अतः उनकी श्रृंगारी प्रवृत्ति और अधिक त होकर हृदयस्पर्शी बन गयी है। किन्तु उन्होंने उर्दू कवियों के सामान्य स्तर से पृथक् हट कर यार का जनाजा निकलते हुए देखकर रने की परिपाटी नहीं ग्रहण की। मूलतः सनेही जी ने अपने श्रृंगार में भारतीय पद्धति पर प्रेम के स्वाभाविक चित्रण के प्रति सजगता है।

योग श्रृंगार के अन्तर्गत सनेही जी ने मान प्रसंग का सरस चित्रांकन है। वियोगावस्था में संयोग कालीन मधुर स्मृतियाँ विरही जनों को करती हैं। इस भाव भूमि पर आधारित सनेही जी का प्रस्तुत सवैया है–

दिन रैन बितावै उसासन लै, सहैं सांसति, दूसरो काज कहाँ है ?
लौं दिलदार न पीर हरै यहि रोग की और इलाज कहाँ है ?
गाँव के लोग हँसे तो हँसें, अपने बस या मन आज कहाँ है ?
लागति साँची 'सनेही' भई, जब लागि गई तब लाज कहाँ है ?"[19]

ही जी के श्रृंगार-काव्य में षट्ऋतु वर्णन भी प्राप्त होता है। जी के प्रकृति-चित्रण में उनकी प्रकृति निरीक्षण की सूक्ष्म दृष्टि हुई है। उनके ऋतु वर्णन का एक उदाहरण इस प्रकार है–

मशर के पाँचों शर हैं शरासन पे,
हर हर बैहर ही हहर बसन्ती है।
ल लड़ाके लड़ जाते हैं लड़ाए बिना,
इन लाड़लों पै ऐसा असर बसन्ती है ॥
कटाक्ष-शर घायल रसिक होते,
पीले मुख जाता विष छहर बसन्ती है।

बेले तरुओं पे चढ़ीं-बेलों पर खिले फूल,
फूलों पे भ्रमर छिड़ा समर बसन्ती है ।।"[20]

सनेही-मण्डल के काव्य में मात्र परम्परित शृंगार-काव्य ही नहीं प्राप्त होता, उसमें छायावादी शैली में भी शृंगार का वर्णन हुआ है। हितैषी जी मधुर कल्पना के आधार पर 'स्वप्न' का मानवीकरण करते हुए कहते है–

"अरे तुम उज्जवल शशि से कौन ?
अंक स्थित आशा कुहूकिनी के जब तुम आते हो उर में,
अपने मायामय दर्पण में, जग दिखला जाते हो उर में।
वन के तपवन खिल-खिल पड़ते,
विकच पद्म हो हिल-हिल पड़ते ।।"[21]

अनूप शर्मा के काव्य में शृंगार का बहु आयामी रूप अभिव्यक्त हुआ है। नारी के बाह्य सौन्दर्य वर्णन में कवि संस्कृत कवियों के काव्य से प्रभावित दिखाई पड़ता है। इस प्रकार के उदाहरण अनूप जी के 'वर्द्धमान' महाकाव्य मे प्राप्त होते हैं। 'शर्वाणी' में अनूप जी ने रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन किया है। रीतिकालीन कवियों के समान अनूप जी ने मदन के प्रयाण का चित्र इस प्रकार उतारा है–

"सज्जित अनूप मजु शिज्जिनी मलिन्द की है,
कुसुम शरासन है, शायक सुमन का।
आगे राजता है चन्द्र मंजुल मशाल सम–
पीछे चारु चामर वसन्त के पवन का।
दायें है कटाक्ष और बायें गीत गाती रति,
बीच में बिराजा महाराजा त्रिभुवन का।
सुर और असुर सब हार बैठते हैं जब,
मथता मनोभव महोदधि है मन का ।।"[22]

अनूप शर्मा के काव्य में छायावादी शैली पर आधारित शृंगार वर्णन ही मिलता।

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' का शृंगार काव्य रीतिकालीन और छायावादी शैली दोनों को ग्रहण किये हुए है। हृदयेश जी की शृंगारी रचना पर सनेही-मण्डल की हालावादी काव्यधारा का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'हृदयेश' की 'हाला' सोमरस और द्राक्षासव के मध्य की वस्तु है। उन्होंने 'हालावाद' का भारतीयकरण कर उसे नूतन रूप प्रदान किया है। छलनी अंगूरी बाला के रस की वशीकरण शक्ति का वर्णन करते हुए हृदयेश जी कहते हैं

"बहुत मुँह लगी है, यह सबकी मोहक अंगूरी बाला।
निज रस के वश में कर सबको उसने नाच नचा डाला।
धैर्यवान का धैर्य छुट गया– देख तुम्हारा दृग-प्याला।
हृदयवान का हृदय लुट गया– देख गुलाबी दृग-हाला ॥"[23]

हृदयेश जी के शृंगार वर्णन में मधुरता, प्रवाहमयता और लोच का प्रभावी समन्वय है। साथ ही उसमें माधुर्य और संगीत का मणिकांचन संयोग है। इस दृष्टि से उनकी 'सुषमा', 'कसक' और 'मधुरिमा' रचनाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कविताओं में गहन वेदना, मधुरटीस, मधु मिलन और चिर यौवन का स्पन्दन है। प्रेम के विभिन्न मनोभावों का सच्चा उद्‌गार हृदयेश जी के काव्य में देखते ही बनता है। उनकी 'कसक' मे यदि हृदय की टीस है, तो 'सुषमा' में प्रेम और सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टिगत होता है। इसमें भावुक कवि के जीवन-दर्शन सहज रूप मे अनुस्यूत हैं।

हृदयेश जी ने उर्दू शैली पर गजलों की भी रचना की, जिसमें प्रेमी की निष्ठुरता के प्रति उपालम्भों का मार्मिक चित्रण मिलता है। यथा–

"एक यह दिल है, जो सौ जान से शैदाई है,
एक तुम हो जो न मिलने की कसम खाई है।
जिसके बदले में लुटा आये हैं दुनियाये निशात,
वह खालिश दिल में छिपाये तेरा सौदाई है,
देखने वाले भी रो देते हैं, इस घटना पर,
अब तेरे रहम के काबिल तेरा सौदाई है।"[24]

प्रणयेश शुक्ल के काव्य में रीतिकालीन और छायावादी शैलियों का शृगार वर्णन हुआ है। छायावादी शैली में प्रकृति–प्रिया का एक चित्रण इस प्रकार है–

"दृग दल पलक कमल-दल के समान,
ओस-बुन्द है या अश्रु बुन्द का ढलकना ?
मृदु मुसकान, अमलान कलियों का मुख–
विकसित लोचनों का चाव से ललकना।"[25]

बचनेश मिश्र का शृंगार वर्णन रीतिकालीन परम्परा पर है।[26]

श्यामविहारी शुक्ल 'तरल' के काव्य में छायावादी काव्यधारा से प्रभावित शृंगार एवं प्रेम के वर्णन की प्रधानता है। इनकी रचनाओं मे अधिकांशतः वैयक्तिक सूक्ष्म अशरीरी प्रेम तथा वियोग की भावोर्मियाँ उठती–गिरती हैं उनमें कवि के आकुल हृदय की ऐकान्तिक करुण पुकार गु

है। उनके गीतों में प्रेम और सौन्दर्य की एकतानता उन्हें अत्यधिक सरस बनाए रहती है। तरल जी की विरहानुभूति अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं तन्मयतापूर्ण है। यथा–

"वर्षा की भीगी रात तुम्हारी सुधि आई।
नयनों से पुलक प्रवाह छलकता जाता,
बरबस लज्जा का भाव झलकता जाता,
दुख से पीली बरसात तुम्हारी सुधि आई।।"[27]

प्रणयेश शुक्ल और अभिराम शर्मा ने विजया की मस्ती छानते हुए 'हालावाद' के समान 'विजयावाद' की परम्परा डाली। अभिराम जी 'विजया बाला' के रूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं–

"मैं कंचन भर लाई हूँ।
मैं सुधा पिलाने आई हूँ।।
झलमल घट में मैं झलक रही,
छलछल मेरी छवि छलक रही।।
पलपल पर प्यासी पलक रही।
तो भी पीने की ललक रही।
मैं निर्झर की झर लाई हूँ।
मैं सुधा पिलाने आई हूँ।।"[28]

लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' का शृंगार और प्रेम वर्णन रीतिकालीन और छायावादी दोनों काव्य प्रवृत्तियों पर आधारित है। उनके एक छन्द में राधा-माधव (वसन्त) की समतुल्यता द्रष्टव्य है, जिसमें राधा रूप के साथ वसन्त का रूप भी वर्णित हुआ है–

"कुन्द कलीन सी मद हँसी लसै, भौंर सी ह्वै गुन गायो करै।
लाली गुलावन की अधरान लै, कोकिला सी बतरायो करै।।
चंपक सी बिलसै दुति देह की, कीर सी पी रट लायो करै।
माधव रंग रंगी वृषभानुजा माधव मैं मिलि जायो करै।।"[29]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों के शृंगार-काव्य में प्रमुखतः रीतिकालीन और छायावादी प्रवृत्तियों का समन्वय हुआ है। इसके साथ ही उसमें 'हालावाद' और 'विजयावाद' की मादकता का भी मनोहारी विधान हुआ है। मूलतः सनेही-मण्डल के काव्य की शृंगार चेतना रीतिकाल से लेकर छायावाद-युग तक की अनेक शृंगारिक प्रवृत्तियों को अपने में समेटे हुए है।

आशु कवित्व तथा समस्यापूर्ति–सनेही-मण्डल के कवियों द्वारा समस्यापूर्ति-काव्य सृजन की प्रवृत्ति का विशेष पल्लवन हुआ कवि सम्मेलनों में

सनेही जी अपनी पूर्तियाँ अत्यन्त मनोयोग पूर्वक सुनाते थे और अपने अनुगतों को भी समस्यापूर्ति के लिए प्रोत्साहित करते थे। उनके पत्र 'सुकवि' मे 'समस्यापूर्ति' का एक स्थायी स्तम्भ रहता था, जिसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों के कवियों की पूर्तियाँ प्रकाशित होती थी। सनेही जी ने समस्यापूर्ति काव्य को हीन काव्य कहने वालों की चिन्ता नहीं की। उन्होंने समस्यापूर्ति काव्य को कवि प्रतिभा की कसौटी के रूप में स्वीकार किया। सनेही जी द्वारा रचित समस्यापूर्तियों में काव्य के नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार के विषय रहते थे। सनेही जी के समस्यापूर्ति-काव्य का एक अपना वैशिष्ट्य है। जहाँ अन्य कवियों की समस्यापूर्तियों में चमत्कार की प्रवृत्ति अधिक मिलती है, वहाँ सनेही जी की समस्यापूर्तियों में चमत्कृति के साथ हृदय को आन्दोलित करने की भी क्षमता विद्यमान है। सनेही जी के प्रभाव से उनके मण्डल के कवियों के समस्यापूर्ति काव्य में कल्पना प्रवणता, अनुभूति की गहनता और चमत्कृति का समवेत रूप लक्षित होता है। इस प्रकार की अनेक समस्या पूर्तियाँ 'सुकवि' में संकलित हुई हैं। यहाँ 'बड़ी-बड़ी आँखें' समस्या की सनेही जी और अनूप शर्मा द्वारा रचित दो पूर्तियाँ उद्धृत हैं—

"धावनैं क्यों पठावतीं द्वार थकीं मग जोय घड़ी-घड़ी आँखें।
क्यों न पियै अभिनन्दन हेतु पिरोवति मोतिन की लड़ी आँखैं।।
क्यों न संवारती री मकरन्द अरी अरविन्द की पंखड़ी आँखें।
ढारती क्यों न कपोलन पै वै बड़े-बड़े बूँद बड़ी-बड़ी आँखैं।।"[80]

"हार बनाइबे को उनके हैं पिरोवती मोतियों की लड़ी आँखें।
दाबि हियो रहि जैबो परै गुरु लोगन की लखि कै कड़ी आँखैं।।
हाय ! कबै फिरि सामुहें ह्वै हैं सनेही सरोज की पंखड़ी आँखें।
सालैं घड़ी-घड़ी जी में गड़ी रस सों उमड़ी वै बड़ी-बड़ी आँखै।।"[81]

सनेही-मण्डल के कवियों ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों भाषाओ मे समस्यापूर्तियाँ रचीं। सनेही जी ने नये कवियों को काव्य सृजन हेतु प्रोत्साहन देने के लिए समस्यापूर्ति की प्रवृत्ति का विशेष प्रचार किया।

नवीन काव्य-विषय- व्यक्ति-प्रशस्ति—सनेही-मण्डल के कवियों ने व्यक्ति पूजा अथवा वीर पूजा से सम्बन्धित अनेक भारतीय महापुरुषों पर प्रशस्तियाँ रचीं। जहाँ भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने राजभक्ति वर्णन के अन्तर्गत ब्रिटिश शासकों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की, वहाँ सनेही-मण्डल के कवियों ने राजभक्ति का परित्याग कर वीर प्रशस्तियों की विपुल मात्रा में रचना की। सन् १९२१ में सनेही जी ने लार्ड चैम्सफोर्ड के   में जो कुछ कहा था, उसमें ब्रिटिश शासकों के प्रति उनका आक्रोश   हुआ दृष्टिगत

होता है—

"तुमको करना था क्या और क्या कर चले ?
निर्दयीपन सभी को दिखा कर चले ॥
पाप पूरी तरह से कमा कर चले।
है गनीमत कि अब भी दया कर चले।
आज दुनिया पै मानो दया कर चले ।"[32]

इस प्रकार भारतेन्दु जी से सनेही जी की ब्रिटिश शासकों के प्रति भिन्न दृष्टि दिखाई पड़ती है। यहाँ भारतेन्दु-मण्डल के कवियो की राजभक्ति क्रमशः विलीन होती हुई दिखाई पड़ती है और शासकों के प्रति कवियों का आक्रोश अभिव्यक्ति होने लगता है। भारतेन्दु युगीन राजभक्ति सनेही-मण्डल के कवियों द्वारा व्यक्ति-प्रशस्ति काव्य के रूप में परिवर्तित हो गई। सनेही जी ने महात्मा गाँधी, गणेशशंकर विद्यार्थी, रायबहादुर पं० बेनीमाधव द्विवेदी और बालगंगाधर तिलक आदि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए उनसे सम्बन्धित प्रशस्तियों की रचना की। सनेही-मण्डल के कवियों ने शहीदों के प्रति भी अपनी श्रद्धाभिव्यक्ति की। सनेही-युग में तिलक और गाँधी ऐसे भारतीय नेता थे, जिन्हें भारतीय जनमानस की विशेष श्रद्धा प्राप्त थी। व्यक्ति-प्रशस्ति काव्य प्रणयन के अन्तर्गत सनेही जी ने अपने युग के साहित्यिक नेता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पित किया है—

"एक ही भारती भक्त था भावुक, राष्ट्र की भाषा का सच्चा पयम्बर।
विधाता में विधि दूसरा था, तप त्याग विराग में जैसे दिगम्बर॥
बारह बाट किया अड़तीस ने, आ गये नन्दन जाने का नम्बर।
तूने दसो किया तू थी उनीस, तो क्यों बनी थी तू इक्कीस दिसम्बर॥"[33]

हितैषी जी ने भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के निधन पर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।[34]

अनुप शर्मा ने व्यक्ति-प्रशस्ति काव्य परम्परा के अन्तर्गत 'गाँधी-चरित' महाकाव्य की रचना की। उनकी दृष्टि में गाँधी जी के अहिंसक सिद्धान्त द्वारा पश्चिमी देशों में शान्ति का प्रसार हुआ है—

"पश्चिम के तम का प्रसार पृथिवी पै देख,
पूर्व में सुभाग्य का सितारा बन चमका।
शाका हुआ ऐसा कि सनाका पड़ा भूतल में,
नाका रुका हिंसा का, धड़ाका रुका बमका।
ज्ञान गुदड़ी से सत्याग्रह का निकला चक्र
धाम धाम धैय को बधा के धीर धमका।

कर्मवीर गाँधी ! कोई कर्म के भरोसे रहे,
भारत की भूमि को भरोसा तेरे दम का ।।"[35]

शिशुपाल सिंह 'शिशु ने सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू का इन शब्दों में स्मरण किया–

"क्षितिज पर से हमको नेता जी ने इच्छायें दीं।
वीर जवाहर ने सन्मुख हो हमको आज्ञायें दी ।।"[36]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के काव्य में प्राचीन और उनके समसामयिक प्रायः सभी राजनेताओं एवं साहित्यकारों के प्रति प्रशस्तियाँ उपलब्ध होती हैं। मूलतः सनेही-मण्डल का प्रशस्ति-काव्य भारतेन्दु युगीन राजभक्ति का तद्‌युगीन विकसित एवं परिवर्तित रूप है।

देशभक्ति–भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलों की अपेक्षा सनेही-मण्डल के काव्य में देशभक्ति-काव्य का स्वर अधिक जागृत, सशक्त और क्रान्तिकारी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। सनेही-मण्डल के कवियों की राष्ट्र प्रेम की काव्य चेतना का स्वर सुषुप्त जीवन को जागृत करने की क्षमता से युक्त, भीषण तूफानी और युग को चेतनशील बनाकर नवनिर्माण के लिए प्रेरक है।

गणेशशंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से सनेही जी ने राष्ट्रीय काव्य सृजन के लिए तत्पर होकर अपने 'सनेही' रूप को 'त्रिशूल' रूप में प्रस्तुत किया। यही 'त्रिशूल' जी हिन्दी काव्य के राष्ट्रीय चेतना के गायक हुए, जिन्होंने हिन्दी काव्य में वर्ग विषमता एवं साम्यवाद को एक जीवन्त और स्पन्दनशील दर्शन के रूप में प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रवर्तन का श्रेय 'त्रिशूल' को ही प्राप्त होना चाहिए। सन् १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पश्चात् आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी काव्य चेतना का प्रसार प्रारम्भ हुआ। इस ऐतिहासिक विकास क्रम के आधार पर यह प्रतीत होता है कि समाजवाद एवं क्रान्ति के प्रथम गायक सुकवि सम्राट गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' थे। वस्तुतः सनेही जी का काव्य युग बोध का स्वस्थ परिचायक है। समाजवादी चेतना का जो साहित्यिक रूप प्रगतिवाद के नाम पर सन् १९३६ के आस-पास प्रारम्भ हुआ, वह सन् १९२१ में सनेही जी की रचना 'साम्यवाद' में पहले ही प्रादुर्भूत हो चुका था। इस प्रकार सनेही जी प्रगतिशील काव्य पुरोधा के वरिष्ठ अग्रज के रूप में प्रस्तुत हुए। सुमित्रानन्दन पन्त ने भले ही सन् १९३९ में 'युगवाणी' में साम्यवादी विचारक कार्ल मार्क्स के विचारों को ग्रहण करके जनता के भविष्य की कार्यक्रमों को गुंजित किया हो परन्तु सनेही जी ने सन १९२० २१ में

अपने युग प्रवर्तनकारी व्यक्तित्व के द्वारा सर्वप्रथम यह उद्घोषणा की—

"समदर्शी फिर 'साम्य' रूप धर जग में आया।
समता का सन्देश गया घर घर पहुँचाया ॥
धनद रंक का ऊँच नीच का भेद मिटाया।
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया चिल्लाया ॥
कांटे बोये राह में फूल वही बनते गये।
साम्यवाद के स्नेह में सुजन सुधी सनते गये ॥"[37]

सन् १९२० में भारतीय राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गाँधी का आगमन हुआ। उन्होंने असहयोग और सत्याग्रह के आधार पर भारतीयों में बल, ओज एवं कर्मठता का समावेश कराने का प्रयास किया, जिससे वे भारतीय कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रोत्थान में तत्पर हों। सनेही जी ने भी असहयोग एवं सत्याग्रह की राष्ट्रीय आत्मा के उन्नयन के लिए आवश्यकता समझी। सनेही जी सत्याग्रही के हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना को भरते हुए कहते हैं—

"मनाते हो घर घर खिलाफत का मातम,
अभी दिल में है पंजाब का गम।
तुम्हें देखता है खुदा और आलम,
यही ऐसे जख्मों का है एक मरहम ॥
असयोग कर दो, असहयोग कर दो ॥"[38]

साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण सनेही जी के काव्य में शोषितों के प्रति विशेष सहानुभूति दिखाई पड़ती है। सनेही जी को यह ज्ञात था कि भारतीय कृषकों के कष्टों का जब तक निवारण नहीं होगा, तब तक राष्ट्रोत्थान असम्भव है, क्योंकि भारतीय कृषक ही भारतीय समाज की रीढ है। उनकी सम्पन्नता पर ही राष्ट्र की स्थापना निर्भर है। 'किसान', 'कृषक-क्रन्दन', 'दीन की आह' और 'दुखिया-किसान' में उनकी कविताएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि सनेही जी ने जन सामान्य के हृदय से न जुड़कर कृषकों के प्रति अपने जीवन के मूल्यवान् अंशों को अर्पित किया है। उस युग के कवियों का ध्यान प्रायः भारतीय कृषक के दैन्यपूर्ण जीवन-यापन के प्रति नहीं गया था। जिस समय मैथिलीशरण गुप्त ने 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है' तथा 'सस्ते में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा और कहाँ है' को स्वर दिया, उस समय सनेही जी को यह आभास हो गया था कि मात्र ग्राम्य सुषमा से भारतीय कृषक को रोटी नहीं मिल सकती है उसे अन्न और वस्त्र की है, जो सतत प्रयत्न करने पर भी उनके हाथ

नहीं लग पा रहा है। सनेही जी को ग्रामीण सुषमा अन्य कवियों के समान अमरावती न लगकर सामंतवादी हथकड़ी में जकड़े भारतीय कृषक जीवन की घोर भयाटवी के समान प्रतीत होती है। इसीलिए भारतीय कृषक सनेही जी के शब्दों में कहता है—

> "इस भारत में कहो नहीं क्या क्या उपजाया।
> सच पूछो तो इसे हमी ने स्वर्ग बनाया॥
> यह माना है यहाँ प्रकृति का दृश्य सुहाया।
> पर केवल छवि देख पेट किसने भर पाया॥
> कहते हैं सब, अन्न ही प्राणों का आधार है।
> जो क्षुधार्त है उसे तो सूना सब संसार है॥"[39]

सनेही जी ने हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू में भी राष्ट्रीय काव्य का सृजन किया, जिसमें उनकी राष्ट्र प्रेम की भावना स्पष्ट रूप में प्रस्फुटित हुई। उनकी रचना की उर्दू शैली गाँधी जी की हिन्दुस्तानी के अधिक समीप है। वे भारतीयों की सैकड़ों वर्षों की पराधीनता से अवगत थे। सनेही जी ने मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करते हुए अदम्य आत्म विश्वास के साथ कष्टों के आगमन को इन शब्दों में चुनौती भी दी है। यथा—

> "शौक जिनके हो सताने का सतायें आयें।
> दूबदू आके हों, यों मुँह न छिपायें आयें।
> देख लें मेरी वफा, आयें जफायें आयें,
> दौड कर लूँगा बलाएँ मैं, बतलाएं आयें॥"[40]

इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि जब सन् १९२१ में महात्मा गाँधी ने भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के लिए असहयोग और अहिंसा का दर्शन सुझाया तो साम्यवादी विचारों के भ्रम का निवारण हुआ। इससे सनेही जी को भी साम्यवादी सिद्धान्तों का यथार्थ ज्ञान हुआ और वे गाँधी-दर्शन की ओर उन्मुख हुए। सनेही जी को यह बोध हो गया कि हिंसात्मक और भारतीय धर्म विनाशक साम्यवादी काव्य चेतना को भारतीय जनमानस से सहजतः संस्पर्श नहीं कराया जा सकता। क्योंकि भारतीय दर्शन सत्य और अहिंसा पर आधारित है। जब से उन्होंने गाँधी-दर्शन को ग्रहण किया, तब से वे पुनः साम्यवाद की ओर नहीं झुके।

सनेही जी के समान हितैषी जी भी साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय मजदूरों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया कि भारतीय कृषक भोज्य पदार्थों के उत्पादक होते हुए भी उसके उपभोग से वंचित हैं वे ग्रीष्म शीत और वर्षा

ऋतु के भयावह प्रहारों को झेलते हुए कर्म में सतत तत्पर रहते हैं, लेकिन इस पर भी उन्हे अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यथा–

"ओ मजदूर ! ओ मजदूर !
तू ही सब चीजों का कर्ता,
तू ही सब चीजों से दूर।
ओ मजदूर ! ओ मजदूर !
तू चाहे तो पल में कर दे, इस दुनिया को चकनाचूर।
ओ मजदूर ! ओ मजदूर !"[41]

अनूप शर्मा के अनेक रचनाओं में राष्ट्र प्रेम की व्यंजना अभिव्यक्ति हुई है। इनमें 'चित्तौड़-दर्शन' और 'स्वतन्त्रते ! स्वागत' रचनाएँ विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं। 'चित्तौड़-दर्शन' में चित्तौड़ के विगत ऐश्वर्य का पुनर्स्मरण किया गया है। इस सन्दर्भ में कवि ने चित्तौड़गढ़, जयमाल, कुंभा-स्तूप, रणक्षेत्र, प्रशंसा, जौहर की कथा, मीरा-मंदिर, निर्झर, काली-मंदिर तथा चित्तौड़-प्रशंसा आदि राष्ट्रीय काव्य चेतना के प्रमुख अंगों का वीर रस पूर्ण स्वर में वर्णन किया है। वे राष्ट्र की अतुल सम्पत्ति हैं। 'स्वतन्त्रते स्वागत' कविता में कवि ने स्वतन्त्रता को देवी के रूप में स्वीकार कर उसके स्वागत की तैयारी की है। यहाँ कवि की कल्पना विशेष रूप से अवलोकनीय है' स्वतन्तता का आगमन और उस आगमन से भारत भूमि पर क्रान्ति के प्रसार का कवि कल्पना प्रसूत मनोरम चित्रण हुआ है। इस स्वतन्त्रता देवी के यशः सुरभि के प्रसार का एक मनोरम चित्र इस प्रकार है–

"चूड़ामणि विदित वसुन्धरा विभूतियों की देवि
महिषी सी तू विराजती भूमि तल में।
सिंहल धरा है पाद पीठ के समान भव्य,
मंजु मेदिनी के महामहिम महल में।
बालारूण रंजित हिमाद्रि का किरीट दीप्त,
तम रत्नाकर रहा है पद तल में।
पवन पयोधर के व्यंजन डुलाता देवि !
तेरी यश छाया है समस्त जल थल में।"[42]

प्रणयेश शुक्ल ने प्रगतिशीलता से प्रभावित होकर वर्ग वैषम्य के चित्रण को अपने काव्य का विषय बनाया। उन्होंने यह देखा कि एक ओर षट्रस व्यंजन से युक्त भोज्य पदार्थ हैं और दूसरी ओर साग-पात ही भोज्य वस्तु है समाज में एक वर्ग का जीवन लघु झोंपी-सा है और दूसरे वर्ग का जीवन

महान यान के समान है। समाज की यह वैषम्य व्यवस्था समाज को पतनोन्मुख बना रही है। यथा–

"यदि उनको षट्रस व्यंजन हैं करने को मधुपान।
साग पात खा शीतल जल पी हम रहते अम्लान।।
स्वास्थ्य देख लें, शान्ति किसे है, है इतनी सी बात।
मेरा जीवन लघु डोंगी-सा, उनका जीवन यान।।"[43]

शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्योद्यान में भी राष्ट्र-प्रेम के विभिन्न पुष्प पुष्पित हुए। साम्यवादी विचारधारा, शोषितों के प्रति सहानुभूति, अंग्रेजो की शिक्षा-नीति, तिलक के राजनैतिक सिद्धान्त, अहिंसा का आदर्श, शोषको के प्रति विद्रोहात्मक स्वर आदि अनेक राष्ट्रीय भावनाओं का पल्लवन शिशु जी के काव्य में हुआ है। अंग्रेजों की शिक्षा-नीति के षड्यन्त्रात्मक आयोजन के प्रति शिशु जी कहते हैं–

"तुमने जो शिक्षा दी हमको क्लर्क बनाने को दी।
चन्द कौड़ियों में मन-माणिक के बिक जाने को दी।।
शिल्प कला, वाणिज्य और कृषि में न समुन्नत करके।
भारतीय संस्कृति का वश भर किया दीप निर्वाण।।"[44]

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' राष्ट्र की स्वतन्त्रता की लड़ाई में क्रान्तिकारी वीरों के साहसिक बलिदान एवं सेवा भाव का स्मरण संवेदनशीलतापूर्वक करते हैं।[45]

द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' भी भारतभूमि के प्रति अपने एक निष्ठ प्रेम को समर्पित करते हुए उसके अतीत को महान गौरवशाली मानते है। उनकी दृष्टि में भारत भूमि धर्म की ध्वजा धारण करने वाली, दैत्यो के गर्व एवं बल की विनाशिका एवं ज्ञान की पिटारी है। यथा–

"धर्म ध्वजा धारी है पुजारी प्रेम प्रभुता का–
पावन पवित्र नदियों के लिए धारा है।
दैत्यों का किया है दूर दर्प बल वीरता से–
धीरता से उज्ज्वल प्रकाश का पसारा है।
टूटा जिस ध्येय पर, पूरा करके ही छोड़ा–
मोड़ा नहिं मुख कभी हिम्मत न हारा है।
पूर्व का सितारा! न्यारा प्यारा परमेश्वर का,
ज्ञान का पिटारा देश भारत हमारा है।।"[46]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के काव्य की राष्ट्र भावना में देश-प्रेम के प्राय: सभी अंग समाहित हैं, जिसमें साम्यवादी विचारधारा का हिन्दी काव्य मे

सर्वप्रथम प्रस्फुटन सनेही-मण्डल के काव्य से ही स्वीकार करना तर्क संगत प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में सनेही जी की 'साम्यवाद' शीर्षक रचना हिन्दी काव्य की सर्वप्रथम प्रगतिवादी काव्य रचना स्वीकार की जानी चाहिए।

समाज-सुधार—सनेही-मण्डल के कवियों का ध्यान सामाजिक कुरीतियों के प्रति भी सजग रहा। उन्होंने देखा कि जो लोग शिक्षित हैं, अपने आपको सभ्य समझते हैं और समाज सुधारक के रूप में जनता के सम्मुख उपस्थिति होते हैं, वे ही जब कथनी-करनी का अन्तर दिखलाते हुए अपनी स्वार्थ रति मे अशिष्टता और निर्लज्जता का परिचय देते है, तो राष्ट्र-हित कैसे सम्भव हो सकता है ? सनेही जी में मानवीय सहानुभूति के विभिन्न गुण समाविष्ट थे। उनका उदार हृदय मानव को कुपथ पर पग रखते हुए कैसे देख सकता था ? इसीलिए उनकी विभिन्न रचनाओं में सामाजिक वैषम्य के परिहार की भावना का स्वर मुखरित हुआ है। उनकी 'दशहरा' और मुहर्रम' रचना मे हिन्दू मुस्लिम ऐक्य भावना का एक स्वर कुछ इसी प्रकार का है—

"कहीं हैं राम की जय-जय कहीं पर सख्त मातम है,
कहीं है हर्ष की ध्वनियाँ कहीं पर नालये ग़म है।
कहीं तो फूल हँसता है, कही पर रोती शबनम है,
मुहर्रम में दशहरा है, दशहरा में मुहर्रम है।।"[47]

भारत ऐसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिए आज भी इसी समन्वयात्मक भावना की आवश्यकता है, जिससे समाज एकता के सूत्र मे बँध सके। हितैषी जी का भी ध्यान समाज सुधार की ओर विशेष रूप से गया। उन्होंने यह देखा था कि विभिन्न देशों में राक्षसी प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं, जिससे उनके अन्तर्मन में परस्पर एक दूसरे को निगल जाने की तत्परता विकसित हो रही है। विश्व के शोषक राष्ट्र तो सदैव युद्ध के लिए उत्सुक रहते हैं, परन्तु संसार को दिखाने के लिए 'कान्फ्रेन्स आफ पीस' किया करते हैं। वस्तुतः हितैषी जी इस प्रकार के वर्णन द्वारा राष्ट्रीय विद्वेष की भावना का परिहार करना चाहते हैं। यथा—

"राक्षसी वृत्तियाँ हैं राष्ट्रों की मौका पायें तो बस हड़प जायें।
इनकी करतूत का जो नंगा चित्र, देख लें आप तो तड़प जायें।।
मोल लेते लड़ाई फिरते हैं, क्या नहीं ये खबीस करते हैं।
फिर भी दुनिया को पीसने के लिए, कान्फरेन्स आफ पीस करते है।।"[48]

सनेही और हितैषी जी की भाँति अनूप शर्मा की रचनाओं भी समाज सुधार की भावना अभिव्यक्त हुई है। वे अभिभावकों को सम्बोधित करते

हुए कहते हैं कि उन्हें चाहिए कि वे वयानुसार बच्चों को शिक्षा दें। यदि अभिभावक गण यह चाहते हैं कि बालक गण बाल्यकाल में ही ज्ञानवारिधि को पार करना सीख लें तो यह असम्भव है–

"दो न विश्व-वारिधि को पार करने की सीख,
कागद की नाव बालुका में अभी खेने दो।
ज्ञान-रवि जीवन-प्रभात में उगा है नहीं,
शिशुता-ऊषा के चरणारविन्द सेने दो॥
आँखों के अखाड़े में कनीनिका की कोर तक,
खेल खेल अभिभावकों को सुख लेने दो।
फिर न मिलेगा कभी खेलना, न छेड़ो उन्हें,
बालक अभी है, कुछ और खेल लेने दो।"[49]

शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्य में भी समाज सुधार परक काव्य चेतना पल्लवित हुई है। उनकी दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान दोनों का लक्ष्य बिन्दु एक ही है। पुराण और कुरान सभी समदृष्टि से देखे जाने चाहिए। शिशु जी राष्ट्र मे साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना को निर्मूल करने के लिए सचेष्ट दृष्टिगत होते हैं।[50]

वचनेश मिश्र की हास्यपरक रचनाओं में समाज सुधार की भावना का स्वर सशक्त रूप में अभिव्यंजित हुआ है। कवि सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का अवलोकन कर उनके माध्यम से हास्य उत्पन्न करने के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है। राजकीय वाहन पर व्यंग्यमूलक एक कविता उद्धरणीय है–

"एक चीज रियासती शान की है. न हया के संकोच विचार की है।
नहिं पेटू द्विजों के अजीरन की, नहिं सेठ के बात विकार की है॥
तुम नाक दबा रहे क्यों ? यह बू बड़े मोल की है, बड़े प्यार की है।
वचनेश कहीं हँसना न अजी, यह पों सरकार के कार की है॥"[51]

द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' का भी ध्यान सामाजिक विघटनात्मक परिस्थितियों की ओर गया है। उन्होंने भारतीयों की अकर्मण्यता को चित्रित कर उन्हें देशोत्थान के लिए सजग और सचेत किया। आधुनिक नवयुवकों के जीवन के खोखलेपन का पर्दाफाश उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ता है।[52]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने इन सुधारपरक रचनाओं में युगीन परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना को विशेष रूप से रेखांकित किया। वचनेश मिश्र ने अपनी परिहासपरक रचनाओं के माध्यम से विविध वर्गों की ो को चित्रित किया उन्होंने समाज का गहन

अध्ययन कर कुरीतियों से बनी पर्तों को उधेड़ने का भी यत्न किया। इसी लिए उनकी परिहासपरक रचनाओं में समाज के सभी वर्ग और समस्याओं के विविध पक्ष काव्य के विषय बन सके।

आर्थिक-दशा–सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में देश की तत्कालीन आर्थिक-दशा के संवेदनशील चित्र उभरे हैं। कृषकों और मजदूरों की आर्थिक-दशा के प्रति सनेही-मण्डल के अधिकांश कवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ। स्वयं सनेही जी कृषकों की शोषित एवं प्रताड़ित दशा पर विशेष चिन्तित दिखाई पड़ते हैं। भारतीय कृषक के शब्दों मे सनेही जी कहते हैं–

'जमीं जिसमें दिन रात यों सर खपायें।
उसे खाद दें, हड्डियाँ तक घुलायें।।
मगर हाय ! कुछ लाभ लेने न पायें।
जमींदार बेदखल कर दें, छुड़ायें ।।[53]

सनेही जी की काव्य रचनाओं में कृषकों की शोषित दशा का चित्रण देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वे स्वयं कृषक बनकर उसके भुक्त भोगी हों–

"वे व्यवहार जिन्हें हम समझते हैं ईश्वर।
निकलते हैं बहुधा यमों से भी बढ़कर।।
भरा धान्य धन से है, उनका सदा घर।
नहीं खत्म फिर भी है, ड्योढ़े का चक्कर।।
उधर हाय ! हैं ब्याज पर ब्याज लेते।
इधर भाव से भी अधिक नाज लेते ।।"[54]

सनेही जी ने अपनी आर्थिक नीति की घोषणा अपनी 'साम्यवाद' रचना मे की। उनके अनुसार समस्त मानव में समत्व अपेक्षित है। समाज में एक सेवक बनकर बेदम हो जाय और एक स्वामी बनकर सब सुखोपभोग कर ले, यह न्याय तुला पर उचित नहीं है। सनेही जी की दृष्टि में समाज की सम्पत्ति पर सबका समान अधिकार होना चाहिए–

"ठहरा यह सिद्धान्त स्वत्व सबके सम हों फिर।
अधिक जन्म से एक दूसरे क्यों कम हों फिर।।
पर सेवा में लगे-लगे क्यों बेदम हों फिर।
जो कुछ भी हों सके साथ ही सब हम हों फिर।।
सांसारिक सम्पत्ति पर सबका सम अधिकार हो।
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो ।"[55]

इस प्रकार सनेही जी ने साम्यवादी सिद्धान्त के अनुसार अपनी

आर्थिक नीति निर्धारित की। हितैषी जी के काव्य में भी भारतीय कृषकों की जीर्ण दशा का चित्रण हुआ है। अपनी 'बैकाली' रचना में उन्होंने यह वर्णित किया है कि भारतीय मानसूनी वर्षा की कोई निश्चित सीमा नही रहती। परिणामतः भारतीय कृषक के समक्ष भयानक वर्षा और कभी अकाल की स्थिति आ जाती है। उस समय भारतीय कृषक चातक के समान एक-एक बूँद के लिए तरसने लगता है। यही कृषक कभी मूसलाधार वर्षा के कारण 'निज-निकेतन' भी खो बैठता है। उसे यह नही ज्ञात हो पाता कि उसका घर किस स्थान पर था ?

-'सूखा ही पड़ गया कहीं हैं नहीं बरसता,
हा ! हा ! चातक-कृषक बूँद के लिए तरसता।
बरसा मूसलाधार कहीं पानी ही पानी,
बहिया में बह गये, न घर की रही निशानी।
कुछ डूबे, कुछ बच गये, तितर-बितर परिवार है,
ग्राम-ग्राम में मच रहा—भीषण हाहाकार है।"[56]

सनेही-मण्डल के कवियों में 'सनेही' और हितैषी' ही राष्ट्र की आर्थिक दशा के प्रति सर्वाधिक सजग दिखाई पड़ते हैं।

मातृभाषा-प्रेम--सनेही-मण्डल के कवि भी भारतेन्दु और द्विवेदी-मण्डल के कवियों के समान मातृभाषा के अनन्य उपासक थे। राष्ट्रीय भावना के पोषक इन कवियों ने इस तथ्य को जान लिया था कि एक भाषा के माध्यम से ही भावात्मक एकता एवं राष्ट्रीयता की भावना को पुनर्जागरित किया जा सकता है। जनमानस में मातृभाषा के प्रति दृढ़ अनुराग प्रकट करने के लिए सनेही-मण्डल के कवियों का प्रयास कम महत्त्वपूर्ण नही रहा। सनेही जी को यह विशेष कष्टप्रद था कि भारतवासी हिन्द के होकर भी हिन्दी के उत्थान की ओर ध्यान न देकर विदेशी भाषा के प्रति श्रद्धावनत हैं। हिन्द मे जिनका जन्म हुआ, वे उसी को बहिष्कृत कर रहे हैं। 'हिन्दी की पश्चाताप' कविता में सनेही जी इसी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहते हैं--

"हा अभागिनी हूँ मैं कैसी कैसे सुत उपजाती हूँ।
कर पाती जब इन्हें काम का दर दर ठोकर खाती हूँ॥
समझदार जब वे होते हैं वधू विदेशी लाते हैं।
मुझको महा गंवारिन कह कर दुख देते दुरियाते हैं॥"[57]

'सनेही' के समान 'हितैषी' को भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति अगाध श्रद्धा थी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के निधन पर उनका मातृभाषा-प्रेम इस प्रकार व्यक्त हुआ

"अरे राष्ट्रभाषा निर्माता-पूज्याचार्य महान द्विवेदी।
विद्यमान हैं नहीं जगत में क्या हम सबके प्राण द्विवेदी ॥[58]

द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' राष्ट्रभाषा हिन्दी की लिपि की वैज्ञानिकता पर विशेष मुग्ध थे। उनकी दृष्टि में नागरी लिपि के समान अन्य कोई शुद्ध लिपि नहीं है। उन्होंने अन्य लिपियों पर अनेक व्यंग्य किये हैं।[59]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने राष्ट्रभाषा के प्रति अपनी अगाध निष्ठा व्यक्त करते हुए भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलों के कवियों की राष्ट्रभाषा चेतना को संवर्धित किया।

परिहास-काव्य--सनेही-मण्डल के कवियों की अनेक रचनाओं में परिहास का प्रसार लक्षित होता है। सनेही जी मूलतः गम्भीर प्रकृति के कवि थे, परन्तु जीवन की विरूपताओं से प्रादुर्भूत क्षोभ को उन्होंने हास्य-व्यंग्य के माध्यम से सरस बनाकर प्रस्तुत किया है। कवि, नेता और समाज के ढोंगी एवं अवांछनीय तत्त्व उनके परिहास काव्य के विषय बने। सनेही जी ने 'कविराज से सम्बोधन' कविता में रीतिकालीन कवियों की विलास मग्नता के प्रति व्यंग्य करते हुए कहा--

"माँ भारती तुम्हारा चलन देख देखकर,
नव नायिका से नित्य लगन देख देखकर।
परकीया में लगा हुआ मन देख देखकर,
उजड़ा हुआ स्वदेश का वन देख देखकर।
आकुल अजस्र धार से आँसू बहा रही,
होकर अधीर धैर्य भवन है ढहा रही।"[60]

हितैषी जी का काव्य व्यंग्य चेतना से भरपूर है। उन्हें शब्द प्रयोग की विनोदप्रियता रुचिकर थी। उनका विचार था कि काव्य में आन्दोद्भावन में व्यंग्य का स्थान मूर्धन्य है। हितैषी जी की लेखनी ने व्यंग्य सृजन में भगवान कृष्ण, महात्मा गांधी, सरोजिनी नायडू और गणेशशंकर विद्यार्थी तक को नहीं छोड़ा। 'भड़ौआ' छन्द के सृजन में वे अद्वितीय थे। हितैषी जी से अधिक और सरस 'भड़ौआ' संभवतः आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा में और किसी कवि ने नहीं रचे। हास्य रस की रचना हितैषी जी 'गंवार' उपनाम से करते थे। इनके 'भड़ौवे' सम्प्रति अनुपलब्ध हैं। यह हिन्दी साहित्य की अपूर्व क्षति है।[61]

आचार्य वचनेश मिश्र तो हास्य रस के अवतार थे। उन्होंने अपनी कला से गम्भीर से गम्भीर विषयों में भी हास्योद्रेक किया है उनकी हास्यपरक रचनाओं में हास्य की गम्भीरता अक्षुण्ण रहती है भले ही विषय की

प्रकृति-वर्णन—सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में प्रकृति वर्णन विभिन्न रूपों में मिलता है। उनके प्रकृति चित्रण में यदि एक ओर परम्परा का निर्वाह है तो दूसरी ओर छायावादी काव्यधारा से प्रभावित प्रकृति चित्रण का सूक्ष्म एवं वायवी स्वरूप भी अभिव्यक्त हुआ है। उनके काव्य में कहीं प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण हुआ है और कहीं रीतिकालीन परिपाटी पर षट् ऋतुओं का वर्णन है। परन्तु उनमें रीतिकालीन कवियों की अपेक्षा पर्यवेक्षण शक्ति अधिक प्रखर है। कहीं-कहीं उनके प्रकृति-प्रणय पर राष्ट्रीय भावना का संस्कार भी दिखाई पड़ता है।

सनेही जी की रचना 'दूब की राम कहानी' में प्रकृति वर्णन का मनोरम रूप दिखाई पड़ता है। द्विवेदी युगीन प्रकृति वर्णन की पद्धति पर आधारित सनेही जी की 'ग्रीष्म-गुणावली' रचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राष्ट्रीय भावधारा से संस्पर्शित 'वसन्त' के प्रति कवि का कथन है—

"हाय हम कैसे वसन्त मनायें।
हार सिंगार उजार भये हैं ढाकहु न पतियावें।
जर्मन रंग कुरंग भयो है रंग कहाँ से लावें।
वैर विरोध परस्पर फैल्यो अरि सम भ्रात लखावें।
कैसे गले खुलि कै हम मिलिहैं सोच संकोच सतावें॥"[65]

हितैषी जी के काव्य में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन प्रधान रहा है। प्रकृति पर मानवीय शृंगारिक चेष्टाओं के आरोपण करने में हितैषी जी सिद्धहस्त हैं। उनके द्वारा चित्रित ऋतुराज वसन्त का एक चित्र इस प्रकार है—

"कहीं लताएँ गल भुज डाले वर तरुओं से मिलती हैं।
पर पति-पवन-स्पर्श किए हट दूर प्रकम्पित हिलती हैं॥
कहीं फलित डालियाँ हो रही हैं एक-एक पर अवलम्बित।
खिल-खिल हँसते हैं गुलाब लख पड़े भूमि पर पत्र पतित॥
जगत सुखी हो रहा 'हितैषी' जंगल में मंगल है।
दुखित है तो क्रूर अपत, अरसिक करील ही केवल है॥"[66]

अनूप शर्मा का प्रकृति वर्णन परम्परित होते हुए भी कल्पना की अतिशयता के कारण अधिक मौलिक एवं अनुभूत्यात्मक बन गया है। प्रकृति के प्रत्यक्ष वर्णन में जो स्वाभाविकता एवं सुस्निग्धता अपेक्षित है, वह अनूप जी के प्रकृति-काव्य में प्राप्त होती है। उन्होंने प्रकृति का आलम्बनगत और अप्रस्तुत मूलक चित्रण अधिक किया है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से अनूप शर्मा का सिद्धार्थ महाकाव्य विशेष महत्त्वपूर्ण है जिसमें प्रकृति का

आलम्बनगत चित्रण प्रधान रहा है। यहाँ मात्र चित्रकार के समान कवि प्रकृति-सौंदर्य का चित्रांकन नहीं करता, प्रत्युत मानवीय भावों और व्यापारो को उभारता भी है। विविध मानवीय भावों से प्रकृति कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल रूप में प्रभावित होती है। उनके काव्य में प्रकृति मानवीय भावों की चिरसंगिनी है, अत: उसमें भी संवेदनशीलता जन्य क्रियात्मकता अंकित हुई है। 'सिद्धार्थ' महाकाव्य से प्रकृति के सौम्य रूप का एक वर्णन उद्धरणीय है–

"रेखा जो धुंधली दिगन्त पर थी, सो रक्त होने लगी।
दोषा थी तमसावृता गगन में, सो भी अदृश्या हुई।।
डूबा निष्प्रभ शुक्र व्योम तल में, भू पै प्रभा छा गयी।
क्या ही पुण्य प्रभात विश्व तल में, फैला महाज्योति से।।"[67]

प्रकृति चित्रण में अनूप शर्मा अपने आस-पास की प्रकृति के व्यापारो और दृश्यों को लेकर काव्य सृजन में सफल रहे हैं। सृजन की इस प्रक्रिया मे कल्पना का योग विशेष सहायक रहा है। इस दृष्टि से अनूप शर्मा हिन्दी के रोमांटिक कवियों की श्रेणी में रखे जा सकते है, क्योंकि उनमें कल्पना-शक्ति के कारण प्रकृति प्रेम की सघन अनुभूति कुछ निर्बल पड़ जाती है।

हृदयेश जी के काव्य में प्रकृति सौन्दर्य वर्णन अधिकांशत: छायावादी शैली पर हुआ है। उनकी खड़ी-बोली की रचनाओं में प्रकृति-चित्रण प्राय. छायावादी पद्धति पर दिखाई पड़ता है। हृदयेश ने प्रकृति का मानवीकृत रूप अधिक उभारा है। यथा–

"क्या न कभी प्रिय ! याद हमारी आती होगी ?
अरुण-ऊषा सिन्दूर लुटाती हँसाती आई,
सुख सुहाग श्री मुकलित वन छवि पर बिखराई।।
अलस-दुपहरी आलस ले तन्द्रिल कर जाती,
सन्ध्या अपनी शून्य उदासी उर भर जाती,
फूल शूल, तारे कंटक सम—
चाँदनी आग लगाती होगी।।"[68]

प्रणयेश शुक्ल के प्रकृति वर्णन में चित्रात्मकता एवं जीवन्तता का समावेश हुआ है। यथा–

"अगम जल धार है नाविक सम्हल कर नाव ले जाना।
तरंगों थपेड़ों से बचा लाना बचा लाना।।
भंवर के तीव्र फेरे हैं, कहीं जल जन्तु घेरे हैं।
अकेरी शून्य बेला मे न संगी संग तेरे हैं [69]

शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्य में प्रकृति के सुकुमार एवं भयावह दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। यथा–

> झरने भूधर के अन्तर की छोड़ छाड़ काली कारा,
> भाग रहे थे रो रोकर के, लिए आँसुओं की धारा,
> उनको अपने प्रस्तावों का मिल न सका था अनुमोदन,
> कब कोई बलहीन जनों का सुनता है अरण्य रोदन ॥"[70]

सारांशतः सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में प्रकृति-चित्रण विविध रूपों में प्राप्त होता है। पूर्व परम्परा से लेकर छायावादी शैली के प्रकृति वर्णन के विविध रूप सनेही-मण्डल के काव्य में स्वीकृत हुए। समग्रतः सनेही-मण्डल के काव्य में परम्परित प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत षट् ऋतु तथा आलम्बनगत प्रकृति वर्णन और छायावादी पद्धति पर प्रकृति के मानवीकृत दोनों रूपों का अंकन हुआ है।

सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य के वस्तु-पक्ष पर समग्रतः विचार करने से वह स्पष्ट हो जाता है कि सनेही-युग से पूर्व काव्य क्षेत्र के मुख्य विषय शृंगार, भगवद्भक्ति एवं राष्ट्र-प्रेम थे। समस्यापूर्तियों का भी विपुल प्रचार हो चुका था। अतएव सनेही-मण्डल के कवियों ने इन काव्य विषयों को ग्रहण कर अपने को परम्परा से सम्पृक्त रखा। युगानुरूप परिवर्तित जनरुचि के अनुरूप उनका ध्यान नूतन काव्य विषयों की ओर भी गया। उल्लेखनीय है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पहले से ही काव्य विषयों मे परिवर्तन एवं संशोधन का समर्थन किया था। राजनैतिक चेतना के परिवर्तित होने पर भारतेन्दु युगीन राजभक्ति की भावना व्यक्ति प्रशस्ति के रूप में परिवर्तितत हो गयी। ईश्वरीय तत्त्वों को सामान्य भावात्मक धरातल प्राप्त हुआ, जिससे राष्ट्रीय-काव्य में मानव मात्र के सुख-दुख एवं उनके शोषित रूप का चित्रण प्रमुखता से होने लगा। कृषकों की करुण अवस्था पर सनेही-मण्डल के कवियों ने विशेष ध्यान दिया। सनेही जी ने वर्ग साम्य के सिद्धान्त के अनुरूप 'साम्यवाद' की रचना कर प्रगतिवादी काव्य सृजन का हिन्दी काव्य में शुभारम्भ किया। वस्तुतः मानव सुलभ सहानुभूति की भावना सनेही-मण्डल के कवियों में उग्र रूप में प्रस्फुटित हुई। युग बोध से सवेदित होते हुए सनेही-मण्डल के दो प्रमुख कवियों प्रणयेश और अभिराम ने शृंगार काव्य में नूतन प्रयोग करके 'विजयावाद' का पल्लवन किया। इस समय तक हिन्दी काव्य में 'हालावाद' का भी प्रचार हो गया था। अत. हृदयेश जी ने इसे काव्य विषय के रूप में ग्रहण किया समाज सुधार के प्रति सनेही मण्डल के कवियों का ध्यान विशेष रूप से ता के

उन्मूलन की ओर गया। परिहास-काव्य सृजन में वचनेश मिश्र ने विशेष कुशलता का परिचय दिया और सामाजिक विसंगतियों को लक्ष्य बनाकर उन्होंने विपुल मात्रा में परिहास-काव्य की रचना की। प्रकृति-चित्रण मे विशेष रुचि सनेही जी, अनूप शर्मा, 'हितैषी' और 'हृदयेश' की रही, जिनमे नवीन उद्भावनाओं का सन्निवेश हुआ है।

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में वस्तु-पक्ष बहु आयामी है। उसमें परम्परा और नवीनता का युगपद् समाहार है। सनेही-मण्डल के कवियों की दृष्टि भविष्य के प्रति इतनी सजग थी कि उनकी बोध चेतना मे भविष्य की चिन्ता भी अंकुरित होती हुई दिखाई पड़ती है। परिणामत. उन्होंने प्रगतिवादी काव्य चेतना को पल्लवित कर अपनी दूर दृष्टि का भी परिचय दिया।

सन्दर्भ

१. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, फरवरी १९३४, पृ. १
२. अनूप शर्मा : वर्धमान, पृ. ३०५
३. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ. १
४. प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ. १०
५. वचनेश मिश्र : शबरी, पृ. १७
६. द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' : मनहरवीर-ज्योति, पृ. १०३
७. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : मधुरिमा, पृ. ६४
८. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मानव, पृ. ३१
९. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सुकवि, जुलाई १९३३, पृ. १
१०. त्रिशूल-तरंग, पृ. ९३
११. अनूप शर्मा : फेरि–मिलिबो, पृ. १९०
१२. श्री प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी पृ. ३५
१३. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : करुणा–कादम्बिनी, पृ. २
१४. उपरिवत्, पृ. ३४
१५. अनूप शर्मा : अग्नि-पथ, पृ. ११७
१६. श्री प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ. २४
१७. वचनेश मिश्र : शबरी, पृ. १५
१८ डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : जय-भरत- पृ ५४
१९ गयाप्रसाद शुक्ल सनेही सुकवि विनोद मार्च १९८१ पृ १

२०. उपरिवत्, अप्रैल, १९८१ पृ. १
२१. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ८
२२. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. १६३–१६४
२३. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : मधुरिमा, पृ. २
२४. उपरिवत्, सुषमा, पृ ५७
२५. श्री प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ. ८
२६. वचनेश मिश्र : शबरी, पृ. ४३
२७. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मेघमाला, पृ २५
२८. अभिराम शर्मा : विजया, पृ. ३५
२९. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : प्रेम-पीयूष, पृ. ५७
३०. अनूप शर्मा : सुकवि, संवत् १९८३, चैत्र, पृ. २५
३१. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : उपरिवत्, पृ. ४३
३२. उपरिवत्, प्रभा, १९८१, १ अप्रैल, पृ. २३७–२३८
३३. उपरिवत्, करुणा–कादम्बिनी, पृ. ६६
३४. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ६४–६५
३५. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. १६५
३६. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : छोड़ो-हिन्दुस्तान पृ. ३०
३७. त्रिशूल-तरंग, पृ. १६
३८. उपरिवत्, पृ ३५
३९. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : कृषक-क्रन्दन, पृ. २३
४०. त्रिशूल : त्रिशूल-तरंग, पृ. ३३
४१. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ९५–९६
४२. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. ९६
४३. श्री प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ. ६४
४४. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : छोड़ो-हिन्दुस्तान, पृ. ७
४५. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मेघमाला, पृ ४४
४६. द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' : मनहर वीर-ज्योति, पृ. ५८
४७. त्रिशूल :त्रिशूल–तरंग, पृ. ९७
४८. जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी' : बैकाली, पृ. ४७–४८
४९. अनूप शर्मा : सुमनांजलि, पृ. १६७
५० शिशुपाल 'शिशु' · छोड़ो हिन्दुस्तान प १०
५१ वचनेश मिश्र सुकवि जनवरी १९३४ पृ ४७

५३. गयाप्रसाद शुक्ल सनेही' : करुणा-कादम्बिनी पृ. ५८
५४. उपरिवत्, पृ. ६०
५५. त्रिशूल : राष्ट्रीय-मन्त्र, पृ. १७
५६. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ६७
५७. त्रिशूल : त्रिशूल-तरंग, पृ. ६८
५८. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ४२
५९. द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' : मनहर वीर-ज्योति, पृ. ३६
६०. त्रिशूल : त्रिशूल-तरंग, पृ. ७१
६१. सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' : महामनीषी जगदम्बाप्रसाद 'हितैषी' व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. ४०
६२. वचनेश मिश्र : सुकवि, १९३४, जनवरी, पृ. ४७
६३. द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' : मनहर वीर-ज्योति, पृ. ७४
६४. त्रिशूल : त्रिशूल-तरंग, पृ. १०२
६५. उपरिवत्, पृ. १००
६६. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ. ५०
६७. अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, पृ. २२३
६८. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : सुषमा, पृ. १९
६९. प्रणयेश शुक्ल : कालिन्दी, पृ. ३२
७०. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : परीक्षा, पृ. ३३

५

सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य का शिल्प-पक्ष

पृष्ठधार– सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों का युगपद समाहार लक्षित होता है। अतः सनेही-मण्डल के काव्य के शिल्प-पक्ष के विवेचन के पूर्व इन दोनों युगों के काव्य की शिल्पगत प्रवृत्तियों का पुनरावलोकन प्रासंगिक होगा।

भारतेन्दु युगीन काव्य में काव्य के शिल्प की तुलना में काव्य-वस्तु के क्षेत्र में नूतनता का उन्मेष परिलक्षित होता है, परन्तु भारतेन्दु युगीन काव्य मे परिवर्तित परिवेश का प्रभाव उसकी शिल्प चेतना पर भी दृष्टिगत होता है। अत: काव्य रूप, भाषिक संरचना अलंकरण प्रवृति और छन्द प्रयोग आदि की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन कवियों की प्रयोग धर्मिता को रेखांकित किया जा सकता है। भारतेन्दु-मण्डल के काव्य में प्रमुखत: मुक्तक-काव्य ही रचे गये। इसके अतिरिक्त निबन्ध-काव्य, सतसई-शतक और प्रगती-मुक्तकों की भी रचना हुई। प्रगीत-मुक्तकों के अन्तर्गत ठुमरी, मल्हार, दादरा आदि राग-रागिनियों पर आधारित परम्परित पद शैली के अन्तर्गत लोक-संगीत की शैली को भी भारतेन्दु युगीन काव्य में प्रश्रय मिला। भारतेन्दु-मन्डल के कवियों ने हिन्दी काव्य को उर्दू काव्य की नफासत का संस्कार दिया। इस प्रकार भारतेन्दु-मण्डल के काव्य में परम्परा संवहन के साथ अभिनव प्रयोगशीलता भी पल्लवित हुई। भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में भारतेन्दु युगीन कवियों की प्रवृत्ति परम्परित ब्रजभाषा तथा उसमें उर्दू शब्दावली के मिश्रण की भी रही। भाषा की रागात्मक स्वतन्त्रता, व्यावहारिकता, लोकोक्तियो और मुहावरों की प्रसंगानुकूलता और उसकी भाषिक संरचना को भारतेन्दु युगीन कवियों ने विकसित किया। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में अवश्य ग्रहण किया गया, परन्तु उसे काव्य की प्रतिनिधि भाषा का रूप नहीं मिल सका। भारतेन्दु युगीन कवियों ने भक्ति काव्य और श्रृंगार काव्य हेतु संस्कृत की कोमल कान्त पदावली तथा वीर काव्य हेतु

ओजपूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया। चित्र भाषा तथा उद्बोधनात्मकता इनकी भाषिक संरचना की प्रमुख विशेषता थी। भारतेन्दु युग के कवियो के काव्य में अलंकरण प्रवृति का अनुकरण नही दिखाई पड़ता। इस युग की रीतिबद्ध शृंगारिक रचनाओं में उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अर्थालंकारों का बाहुल्य भले ही दृष्टिगत हो, लेकिन साधारणतः काव्य में अलंकारों का स्वाभाविक सन्निवेश मिलता है। भारतेन्दु-युग के अधिकांश कवियों का काव्य पद शैली और परम्परित छन्दों में रचित है, लेकिन शृंगार कालीन कवियों की अपेक्षा इस युग के कवियों ने छन्द विधान के वैविध्यपूर्ण प्रयोगो के प्रति भी विशेष ध्यान दिया। फलतः उन्होंने उर्दू, फारसी और बंगला आदि के छन्दों का प्रयोग किया।

सन् १६०३ में जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के सम्पादक नियुक्त हुए, तब उन्हें परिवर्तित जनरुचि के अनुरूप चिरप्रयुक्त ब्रजभाषा का आकर्षण निःशेष प्रतीत हुआ। उन्होंने समस्यापूर्तियों और नीरस तुकबन्दियो को हीन काव्य कहते हुए समस्त छन्दों के प्रयोग, सभी काव्य रूपों के ग्रहण और गद्य-पद्य की भाषा के एकीकृत रूप के प्रयोग करने का समर्थन किया। उनके इस प्रयास से काव्य की मुख्य भाषा खड़ी बोली बनी। परन्तु साथ ही ब्रजभाषा का प्रयोग भी चलता रहा। द्विवेदी जी ने भाशा और वर्तनी की शुद्धता और एकरूपता पर भी विशेष बल दिया। अतः भाषा की शुद्धता की दृष्टि से द्विवेदी-युग की काव्य भाषा भारतेन्दु-युग की अपेक्षा अधिक व्याकरण सम्मत एवं परिमार्जित बन सकी। द्विवेदी युगीन कवियों ने काव्य भाषा में नादात्मक शब्दों, विलक्षण विशेषणों, अभूतपूर्व लाक्षणिक चपलता, विशिष्ट अप्रस्तुतों और प्रतीकों के प्रयोग द्वारा नूतन मूर्तिमत्ता का विधान किया। आचार्य द्विवेदी के निर्देश से समस्यापूर्ति काव्य रचना का बहिष्कार अवश्य हुआ, परन्तु 'रत्नाकर' और 'कविरत्न' प्रभृति कुछ कवि द्विवेदी-युग मे भी ब्रजभाषा काव्य के परम्परित पथ पर चलते रहे। द्विवेदी-युग के काव्य में प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत प्रभृति सभी काव्य रूपों को ग्रहण किया गया। इस युग में काव्य रचना हेतु कथाश्रय को प्रमुखता प्राप्त हुई। हिन्दी के प्रायः श्रेष्ठ महाकाव्य द्विवेदी-युग में सृजित हुए। द्विवेदी युगीन कवियों ने ब्रजभाषा के माधुर्य, सौन्दर्य एवं अभिव्यंजन की क्षमता से खड़ी बोली को समृद्ध किया। वस्तुतः द्विवेदी-युग में खड़ी बोली अपनी असक्षमता, अव्यवस्था एवं अपरिष्करण की यात्रा को पार कर सुव्यवस्थित काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। द्विवेदी-युग में हिन्दी के अपने छन्दों के अतिरिक्त संस्कृत के वर्णित छन्दों और उर्दू बहरों को भी ग्रहण किया गया। फलत

द्विवेदी-युग के कवि दोहा, कवित्त, सवैया आदि परम्परित छन्दों के प्रयोग तक ही सीमित नहीं रहे, प्रत्युत उन्होंने रोला, छप्पय, कुण्डलियाँ, सरसी और लावनी आदि छन्दों को भी अपनी रचनाओं में ग्रहण किया।

सनेही-मण्डल के काव्य में भारतेन्दु, द्विवेदी युगों के काव्य की शिल्पगत विभिन्न प्रवृत्तियों का समन्वित विकास दृष्टिगत होता है। भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन काव्य-शिल्प की इन विभिन्न प्रवृत्तियों से सनेही-मण्डल के कवियों ने संस्कार ग्रहण किये। साथ ही उन्होंने अपने काव्य की अभिव्यजन क्षमता को परिस्कृत एवं प्रभावी बनाने के लिए अभिनव प्रयोग भी किये। इस प्रयोग शीलता में ही उनकी काव्य साधना का वैशिष्ट्य देखा जा सकता है।

भाषा— द्विवेदी-युग में काव्य भाषा के क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन घटित हुआ। गद्य और पद्य की भाषा की एकीकृत नीति के विकास के परिणामस्वरूप खड़ी बोली काव्य की मुख्य भाषा बनी, परन्तु ब्रजभाषा काव्य परम्परा द्विवेदी-युग में भी विकासमान रही। सनेही-मण्डल के कवियो ने जहाँ द्विवेदी युगीन प्रतिष्ठित काव्य भाषा खड़ी बोली को ग्रहण किया, वही उन्होंने परम्परित व्रजभाषा को अपना कर द्विवेदी युगीन काव्य भाषा खडी बोली के समस्त सौन्दर्य एवं गुणों को ब्रजभाषा में अनुस्यूत करने की साधना की।

द्विवेदी-युग में जिन सुकवियों ने खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप मे सुसज्जित, शृंगारित एवं परिष्कृत करने का प्रयास किया, उनमें मैथिलीशरण गुप्त, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के नाम उल्लेखनीय हैं। परन्तु इन तीनों कवियों में सनेही जी का अपना एक वैशिष्ट्य है। उनका भाषा पर विशिष्ट अधिकार था। वे सशक्त, टकसाली, मुहावरेदार, ओजस्विनी एवं प्रभावशाली भाषा के प्रयोक्ता के रूप में हिन्दी काव्य जगत में प्रतिष्ठित हुए। भाव और अनुभूति के अनुरूप सनेही जी की भाषा अत्यन्त सुष्ठ है। सनेही जी का ब्रजभाषा और खड़ी बोली पर समान अधिकार था। उनकी काव्य भाषा का प्रमुख वैशिष्ट्य है, उसका शब्द और समग्र सौष्ठव। 'सुकवि' के संपादक और सनेही-मण्डल के प्रवर्तक के रूप में सनेही जी की भाषा का निजी वैशिष्ट्य है, जो उन्हें अपने मण्डल के आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक सिद्ध हुई। ब्रजभाषा के टकसाली रूप का जैसा प्रयोग सनेही जी के काव्य में प्राप्त होता है, वैसा आधुनिक युग में सम्भवतः 'रत्नाकर' के काव्य को छोडकर अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता सनेही और उनके मण्डल के कवियों का खड़ी

बोली, ब्रजभाषा और उर्दू भापाओं की शब्दावली सहज सुलभ थी। सनेही-मण्डल के कवियों ने ब्रजभाषा की मधुरता और कोमलता को खड़ी बोली मे प्रतिष्ठापित करने का स्तुत्य प्रयास किया। सनेही जी के युग में खड़ी बोली के समक्ष यह समस्या थी कि उसे ब्रजभाषा के समकक्ष सशक्त रूप में किस प्रकार प्रतिष्ठित किया जाय। भाषा परिष्करण की इस प्रक्रिया को जहाँ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने गद्य क्षेत्र में सम्पादित किया, वहीं सनेही और उनके मन्डल के कवियों ने उसे पद्य के क्षेत्र में पूर्णता प्रदान की।

तत्सम– सनेही-मण्डल के कवियों मे सनेही जी, अनूप शर्मा और वचनेश मिश्र की भाषा में तत्सम शब्दावली का प्राचुर्य मिलता है। अनूप शर्मा के काव्य में संस्कृत गर्भित, प्रवाहपूर्ण, प्रांजल, अर्थगाम्भीर्य एवं व्याकरण सम्मत भाषा का रूप सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इनके काव्य में संस्कृत के महाकवि माघ के समान नूतन शब्द-विधान भी मिलता है। पण्डित्य प्रदर्शन के कारण अनूप जी की काव्य भाषा आचार्य केशवदास की काव्यभाषा के निकट लगती है। अतएव इनकी भाषा में शब्दों का ऐसा घटाटोप बन जाता है कि अनुभूतियाँ कहीं-कहीं प्रच्छन्न सी होती दिखाई पड़ती हैं। अप्रचालित शब्दो के प्राचुर्य के कारण अनूप जी की भाषा में कहीं-कहीं च्युति संस्कृति, अधिक पदत्व और पुनरुक्ति आदि दोष सहज रूप में परिलक्षित होते हैं। 'शर्वाणी' मे अनूप जी ने प्रांजल, विदेशी शब्दों से रहित, व्याकरण सम्मत, तत्सम शब्दों से युक्त संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग किया है। उनके 'वर्द्धमान' महाकाव्य में अप्रचलित शब्दों का इतना बाहुल्य है कि पाठक को कोश देखने की आवश्यकता का अनुभव होने लगता है। इस रचना में 'वंशस्थ' छन्द के कारण भाषा में कसावट भी पर्याप्त है। वचनेश मिश्र की 'शबरी' रचना मे तत्सम शब्दावली का विशेष प्रयोग हुआ है।

तद्भव– सनेही-मण्डल के कवियों में 'सनेही' और वचनेश मिश्र ने तद्भव युक्त भाषा का विशेष प्रयोग किया। सनेही जी की स्फुट रचनाओं तथा वचनेश मिश्र की 'शबरी' रचना में तद्भव शब्दावली के प्रयोग बहुलता से मिलते हैं। एक उदाहरण उद्धरणीय है–

"दृग केमरा तारक लेन्स किये, खरी दीठि को फोकस दूरि लौं लाये।
बिनु लागि हिये को पलेट तहाँ प्रतिबिम्ब कितेक परे औ बिलाये॥"[1]

देशज– सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी, हृदयेश जी और कपूर जी की भाषा में देशज शब्दों के प्रयोग प्राप्त होते हैं। यथा–

"उसमें चमके चाँदनी, चाँदी सी चहुँ तर्फ॥"[2]

विदेशी विदेशी शब्दो के अन्तगत सनेही मण्डल के कवियों ने उर्दू

और फारसी शब्दों का विशेष प्रयोग किया। सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी और हृदयेश जी ने उर्दू और फारसी शब्दों के प्रयोग में विशेष रुचि दिखाई। सनेही जी उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी के प्रयोग में अपूर्व रूप से सफल रहे। उन्होंने अपने काव्य-मण्डल के पथ को प्रशस्त करने हेतु एवं राष्ट्रीय भावना के प्रचारार्थ 'हिन्दुस्तानी' और उर्दू भाषा के शब्दों को निःसंकोच ग्रहण किया। उनकी भाषा गाँधी जी की 'हिन्दुस्तानी' के अधिक समीप दृष्टिगत होती है। सनेही जी के अतिरिक्त उनके मण्डल के अन्य कवियों में हृदयेश जी उर्दू शैली में उर्दू फारसी शब्दों के अच्छे प्रयोक्ता सिद्ध हुए। उन्होंने हिन्दी में उर्दू बहर का सफल प्रयोग किया। फलतः उनके गीतों में संगीत की स्वर लहरी जैसे झंकृत हो उठती है।[3] वचनेश मिश्र की भाषा में भी उर्दू शब्दों का मिश्रण दिखायी पड़ता है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ– सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी और शिशु जी ने मुहावरों और लोकोक्तियों के सरस प्रयोग किये है। शुद्धता और मुहावरेदानी के कारण सनेही जी की काव्य भाषा में आद्यन्त सजीवता एव सबलता लक्षित होती है। सनेही-मण्डल के कवियों द्वारा प्रयुक्त मुहावरो के कुछ उदाहरण उद्धरणीय हैं–

"नजर भेंट न कर दिया नाकों दम है।[4]

"बारह बाट किया अड़तीस ने, आ गये नन्दन जाने का नम्बर।"[5]

"कोढ़ में खाज सरीखा घुसा खून का प्यासा पूंजीवाद।"[6]

"अब न लकीर के फकीर कहलाइये।"[7]

"बना दूध की माखी।"[8]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने अपनी काव्य भाषा को सुसज्जित करने के लिए विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण किया।

सनेही जी के समान हितैषी जी ने भी व्रजभाषा से ही अपनी काव्य साधना प्रारम्भ की। उन्होंने मात्र परम्परित विषयों को ही व्रजभाषा के माध्यम से व्यक्त नहीं किया, प्रत्युत समसामयिक राष्ट्रीय भावनाओं का भी व्रजभाषा में साधिकार अभिव्यंजन किया। हितैषी जी द्वारा प्रयुक्त 'भड़ौवा' छन्द में व्यंग भाषा का चमत्कारिक एवं शब्दों का क्रीड़ात्मक प्रयोग सहज रूप में गुम्फित हुआ है। खड़ी बोली से हितैषी जी ने सवैया की स्वर लहरी का जो संयोजन किया, उससे खड़ी बोली में एक प्रकार की जीवन्तता आ गयी। हितैषी जी ने खड़ी बोली में जिस कुशलता के साथ सुन्दर सवैयों की रचना की वैसी सनेही के अन्य कवियों में नही दृष्टिगत होती। इनकी भाषा टकसाली हिन्दी है कीजो समता एव

संगीतात्मकता हितैषी जी की काव्यभाषा में दिखाई पड़ती है, उसका अपना अलग महत्त्व है। उन्होंने परम्परित छन्दों में खड़ी बोली की कर्कशता का तो परिष्कार किया ही, कल्पना की उड़ान एवं अभिव्यक्ति की नूतनता का भी विधान किया। छायावादी काव्यभाषा का संस्कार भी हितैषी जी के गीतों में दिखायी पड़ता है। हितैषी जी की खड़ी बोली कविताओं में ब्रज-भाषा की मधुरता एवं कोमलता अनुस्यूत सी हो गयी है। यथा—

"उमड़ पड़ती थी उरोज उठाये हुए नदियाँ लहराती हुईं।
जब वायु से मल्लिका डोलती थी कटि-कुंचित को लचकाती हुईं।
लिपटी तरुओं को न त्यागती थीं, जब बल्लरियां मदमाती हुईं।
कलियां निकली मुसकाती हुईं, विहंगावलियाँ चली गाती हुईं।"[9]

अनूप शर्मा की भाषा में अपूर्व शब्द सामर्थ्य हैं, जो खड़ी बोली हिन्दी काव्य में एक दुर्लभ वस्तु है। उनके छन्द के प्रत्येक चरण में शब्दों का टकसाली रूप देखते ही बनता है। अनूप जी के 'सिद्धार्थ' महाकाव्य के शृंगार वर्णन में उनकी ललित शब्दावली एवं सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण के प्रसंग में ओजपूर्ण शब्दों में भाषा का मर्मस्पर्शी प्रवाह अत्यन्त सफल रहा है। कवि ने 'फेरि-मिलिबो' रचना में पद्य की विशिष्टता की रक्षा करते हुए ब्रजभाषा गद्य के परिष्कार के प्रति ध्यान दिया है और इसमें कवि को सफलता भी मिली है। परन्तु कुल मिलाकर अनूप जी की भाषा में लचीले-पन एवं सहज प्रवाह के गुण सर्वत्र लक्षित होते हैं।

सनेही-मण्डल के हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में सवैया और घनाक्षरी तथा सुमधुर गीत सृजन में सफल सिद्ध हुए। भाव सघनता एवं संगीतात्मकता उनके गीतों का निजी वैशिष्ट्य है। 'हृदयेश' की रचना 'कसक' की भाषा खड़ी बोली है, जो सुव्यवस्थित, सुकोमल, सबल और गठीली है। उसके वर्णन स्वाभाविकता से पृथक् नहीं हैं। 'हृदयेश' की भाषा में कोमलता के साथ माधुर्य का प्राचुर्य लक्षित होता है।[10]

प्रणयेश शुक्ल ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ कीं। भावानुरूप सुकोमल शब्दों के प्रयोग में प्रणयेश शुक्ल सिद्धहस्त रहे हैं। इनकी ब्रजभाषा रचनाओं में मध्यकालीन परम्परित विषयों का समावेश न होकर बीसवीं शताब्दी के काव्य के वर्ण्य विषयों को स्थान प्राप्त हुआ है। मधुरता इनकी ब्रजभाषा का प्रमुख गुण है।

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' की 'मेघमाला' में भाषा का सौष्ठव, शब्द चयन में लालित्य, गीतों में झंकार और अभिव्यक्ति में मौलिक बांकपन सहज

रूप में अनुस्पूत हुआ है। उनके गीतों में भावानुकूल शब्दों का सहज प्रवाह आद्यन्त लक्षित होता है। उनकी भाषा में नाद सौन्दर्य का विधान भी अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है।[11]

किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' के काव्य में खड़ी बोली और ब्रजभाषा का मिश्रित रूप प्राप्त होता है, जो कवि के मनोभावों को अभिव्यक्त करने मे सक्षम रहा है। कवि की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू, फारसी में होने के कारण उसकी भाषा पर कहीं-कहीं उर्दू, फारसी का संस्कार दिखाई पड़ता है, परन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द प्रायः प्रचलित एवं बोधगम्य हैं।

वचनेश मिश्र ने यद्यपि खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में अपनी रचनाएँ रचीं, तथापि उनका सहित्यिक महत्त्व प्रमुखतः ब्रजभाषा रचनाओ पर ही आश्रित है। वचनेश जी की भाषा में अवधी के अप्रत्यक्ष प्रयोगो के साथ-साथ खड़ी बोली एवं उर्दू शब्दों का भी मिश्रण दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से उनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा नहीं कही जा सकती। वचनेश जी की भाषा में परिमार्जन के साथ-साथ शब्द-चित्र अंकित करने की भी सामर्थ्य है। उनकी रचनाओं में 'शबरी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसकी भाषा साहित्यिक न होकर स्वाभाविक ब्रजभाषा है। इसमें तत्सम शब्दावली के साथ तद्भव बहुल और लोक शब्दावली का मनोहर समावेश हुआ हैं। अवधी के सरस प्रयोग के कारण उनकी भाषा सरस, जीवन्त एवं सुमधुर बन गई है। इनकी व्यावहारिक ब्रजभाषा में अभंग पदों का प्रयोग हुआ है।

शैली– सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में विभिन्न काव्य शैलियो के दर्शन होते हैं। सनेही जी ने विविध शैलियों का प्रयोग कर अपने मण्डल के कवियों को भी अनेक शैलियों में काव्य सृजन के लिए प्रेरित किया था। सामान्यतः सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में प्रयुक्त काव्य शैलियों के निम्नलिखित वर्ग बनाए जा सकते हैं–

सरल शैली– इस शैली का प्रयोग सनेही जी की रचनाओं में अधिक मिलता है। इस शैली में भावों को सरल एवं स्वाभाविक शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने की प्रवृत्ति मिलती है। द्विवेदी-युग में इस शैली का सर्वाधिक प्रयोग हुआ। सरल शैली का एक उदाहरण उद्धृत है–

"प्रभात आया, तम नष्ट हो गया, त्विषा लगी पूर्व दिशा प्रकाशने।
समीर डोला, सुमनावली हिली, प्रकाश फैला दश दिग्विभाग में।"[12]

अलंकृत शैली– इस शैली में अलंकारों के प्रयोग द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास मिलता है सनेही मण्डल के समस्त कवियों में सनेही जी ने भी इस शैली को सबसे अधिक ग्रहण किया। प्रणयेश जी के काव्य में

अलंकृत शैली का विधान मिलता है। यथा–

"गगन पट पर बादलों के रंग में,
अचिर विद्युत तूलिका ले संग में।
सरलता से विश्व छवि अंकित किये–
स्वप्न संगिनि मुग्ध मलय तरंग में।
ज्ञात होती नव प्रभा की मिन्न सी,
चित्रलेखा चित्र चित्रित चित्र सी।।"[13]

संगीतात्मक शैली– इस शैली में संगीत की लय, गति एवं ध्वनि की प्रमुखता रही है। हृदयेश जी और तरल जी के काव्य में संगीतात्मक शैली के प्रयोग प्रचुरता के साथ मिलते हैं। यथा–

"सुना मत सरिते। कल-कल नाद।
भंग न कर एकान्त हमारा मुखरे! कर न विवाद।
कल-कल छल-छल टलमल निर्मल जल में भर अह्लाद।
लहरों में धोती जाती हो जीवन के अवसाद।।"[14]

भावानुवाद शैली– इस शैली में आधार काव्य के भावों के रूपान्तरण की प्रवृत्ति पल्लवित हुई है। यथा–

"सुना दो फिर से वह संगीत।
जीवन धन। जिससे नवजीवन आये आशातीत।
स्वर प्रवाह ऐसा लहराये, भावों का वितान-तन जाये,
तन-मन जीवन एक बनाये,
भर दे वह अव्यक्त रागिनी, जग में,
जग हो गीत।।"[15]

उपर्युक्त विभिन्न शैलियों के अतिरिक्त सनेही जी के कवि व्यक्तित्व से निर्मित उनकी एक विशेष प्रकार की शैली भी उनके काव्य में दृष्टिगत होती है, जिसका सीधा सम्बन्ध सनेही जी के तेवर से है। 'तेवर' का अभिप्राय यहाँ सनेही जी की उस भाव मुद्रा से है, जो उनके काव्य-पाठ के समय निर्मित होती थी। उस 'तेवर' को उनकी उर्दू शब्दावली प्रधान रचनाओं में विशेषतः देखा जा सकता है। इन रचनाओं में सनेही जी के दृढ़ संकल्पात्मक तेजस्वी, उन्मुक्त एवं स्वाभामिनी व्यक्तित्व का समन्वयात्मक दर्शन होता है। सनेही जी का यह तेवर उनकी शैली का सर्वाधिक मौलिक एवं उज्ज्वल स्वरूप है।

अलंकार– सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में अलंकारों का प्रयोग प्राय सायास न होकर सहज रूप में लक्षित होता है इसीलिए उनके काव्य

में स्वाभाविकता एवं ओजस्विता सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इसके साथ ही सनेही-मण्डल के काव्य में अप्रस्तुत विधान के प्रयोग प्रायः औचित्यपूर्ण रहे हैं।

शब्दालंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों ने अनुप्रास और श्लेष अलंकारों को विशेष रूप से ग्रहण किया। सनेही-मण्डल के कवियों में अनुप्रास के प्रयोग में हितैषी, अनूप शर्मा, प्रणयेश शुक्ल और वचनेश मिश्र ने विशेष रुचि दिखाई। हितैषी जी के काव्य में अनुप्रास की छटा विशेष रूप से दृष्टिगत होती है। अन्त्यानुप्रास और उपान्त्यानुप्रास मिलाकर छन्द लिखने की शैली के वे एक प्रकार से प्रवर्तक हैं। वचनेश मिश्र भी अनुप्रास के प्रयोग में विशेष निपुण थे। यथा–

"चकचौंधि चितेरिन चित्र भई, नंहि चित्र खिच्यो, अपनै खिचि आये।"[16]

इस चरण में 'च' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

श्लेष के प्रयोग में सनेही-मण्डल के कवियों में अनूप शर्मा और शिशुपाल सिंह 'शिशु' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अर्थालंकारों के अन्तर्गत साम्यमूलक अलंकारों में सनेही-मण्डल के कवियों ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, सांगरूपक, सन्देह, स्मरण और दृष्टान्त, अलंकारों के प्रयोग विशेष रूप से किये। सनेही-मण्डल के कवियों में अनूप शर्मा, किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' और शिशुपाल सिंह 'शिशु' ने उपमा; अनूप शर्मा और शिशुपाल सिंह 'शिशु' ने उत्प्रेक्षा; हितैषी, अनूप शर्मा, हृदयेश, प्रणयेश और शिशु जी ने सांगरूपक; अनूप शर्मा ने सन्देह; 'शिशु' ने स्मरण और दृष्टान्त में विशेष रुचि दिखाई। वस्तु वर्णन में सनेही जी के सम्मुख जब कोई ऐसा प्रसंग आता है कि प्रकृति जगत में उसका उपमान नहीं प्राप्त होता, तब वे प्रकृति क्षेत्र से कुछ विशिष्ट तत्त्वों को इस प्रकार ग्रहण करते हैं कि वर्ण्य-विषय से उसकी सम्भावित साम्यता प्रकट की जा सके। ऐसे स्थलों पर सनेही जी उत्प्रेक्षा का विशेष रूप से प्रयोग करते हैं। सांगरूपक अलकार के निर्वाहन में सनेही जी ने अपनी प्रखर कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। इसमें उनकी कल्पना ऐसे धरातल पर संचारित होती है कि वह जीवन और जगत तथा प्रकृति और मानव सभी में सहानुभूति का संचार करती हुई दिखाई पड़ती हैं। यथा–

"प्रखर काल रवि-ताप, नीर निधि है अन्तःस्तल।
वाष्प-अश्रु कण पूर्ण हुआ है, गगन-दृगंचल।
ठण्ढी सांसे शीत पवन घन छवि छहरायें।
शान्ति-स्वाति के बून्द विरहि जन चातक-पायें।

प्रेमांकुर अंकुरित हों, जहाँ सुरस सरसे वहीं।
यह करुणा-कादम्बिनी, प्रेम-वारि बरसे वहीं॥"[17]

इस सांगरूपक में कवि की कल्पना का विशेष योग दृष्टिगत होता है। करुणा को कादम्बिनी एवं प्रेम को वारि के रूप में देखना कवि कल्पना की ही उपज है। सूक्ष्म दृष्टि जल एवं प्रेम को तत्त्व एवं अनुभूति के रूप में अनुभव करती है। परन्तु कल्पना शक्ति के द्वारा कवि दोनों में साहचर्य स्थापन का निर्वाह काफी दूर तक करता चला जाता है। कवि ने अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा अन्तस्तल को नीर निधि, दृगंचल को गगन, अश्रुकण को वाष्प, ठण्डी सासों को शीतल पवन और विरही जनों को चातक के रूप में प्रस्तुत कर उनमें सम्बन्ध-भावना का मनोहर अन्वेषण किया है।

हितैषी जी के काव्य में व्यंजना शक्ति के बाहुल्य से अधिकांश स्थलों पर भाव और अलंकार व्यंग्यार्थ रूप में प्रयुक्त हुए हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त रूपक का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"लाल ध्वजा ले फूले किंशुक द्वारपाल हैं अड़े हुए।
नवपल्लव-परिधान पहिन तरु-सैनिकगण हैं खड़े हुए।
पुष्पाभरणों से सज्जित पुष्पासन पर माधव अभिराम।
हुए सुशोभित एक पार्श्व में बैठे मन्त्री-काम ललाम॥"[18]

अनूप शर्मा ने 'फेरि-मिलिबो' काव्य में इन्द्रप्रस्थ वर्णन में ही ३६ और सिंहासन राधा पर ३६ उत्प्रेक्षाओं का सृजन कर अपने पाण्डित्य को प्रदर्शित किया है।[19]

मूर्त को अमूर्त से उपमित करने में अनूप जी की कल्पना ने विशेष कुशलता दिखाई है। निम्न उदाहरण में रानी त्रिशला की उंगली को साक्षात् महाभारत की कथा सिद्ध करना कवि की उच्च कल्पना का परिचायक है—

"नलोपमा अक्षवतीस उर्म्मिका मनोहरा सुन्दर पर्व संकुला।
नरेन्द्र जाया कर अंगुली लसी कथा महाभारत के समान ही॥"[20]

वचनेश मिश्र की प्रवृत्ति सांगरूपक के प्रयोग की ओर विशेष रूप से परिलक्षित होती है। उनकी 'गोपाल-हृदय' रचना में सांगरूपक के आधार पर कृष्ण लीला के दार्शनिक तत्त्वों की मार्मिक व्याख्या हुई है।

वैषम्यमूलक अलंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों ने विशेषोक्ति को प्रमुखतः से ग्रहण किया है। श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' के काव्य से विशेषोक्ति का एक उदाहरण इस प्रकार है

"साथी समीर रहा पर नाता समीर से जोड़ सका नहि कोई।
शून्य से दूर रहा पर शून्य का दामन छोड़ सका नहि कोई।
चाह सुखों की रही पर वेदना से मुख मोड़ सका नहि कोई।
जन्म से प्रेम किया पर मृत्यु का बन्धन तोड़ सका नहि कोई ॥"[31]

शृंखलामूलक अलंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों का एकावली अलंकार के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्य से एकावली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"गहन विजन में गुहा में अंधियारी गम्भीर धुसी।
अंधियारी में देह, देह में डायन सी वह पीर घुसी ॥"[32]

न्यायमूलक अलंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी और अनूप शर्मा ने विशेष योग दिया। सनेही जी का ध्यान अर्थान्तिरन्यास और अनूप शर्मा का ध्यान यथासंख्य एवं मीलित अलंकारों के प्रयोग की ओर विशेष रूप से रहा।

गूढार्थप्रतीति मूलक अलंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियो ने अप्रस्तुत प्रशंसा का विशेष प्रयोग किया। जैसे—

"अस्ताचल की ओर सूर्य अति मुसकाता जाता था।
दिन सन्ध्या की ओर लालिमा विकसाता जाता था ॥
पूर्व की ओर वृक्ष पर्वतों की छाया जाती थी।
निज नीड़ों की ओर विहंगों की काया जाती थी ॥"[33]

नवीन अलंकारों के अन्तर्गत सनेही-मण्डल के कवियों ने मानवीकरण और ध्वन्यार्थ व्यंजकता को ग्रहण किया। हितैषी, अनूप शर्मा, प्रणयेश और शिशु ने मानवीकरण तथा श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' ने ध्वन्यार्थ व्यंजकता के विशेष प्रयोग किये। मानवीकरण का एक उदाहरण इस प्रकार है—

"ले घन के गाजते शौर्य दिखाती हुई बरसा फिर आ गयी।
विद्युत के बरछे धनु इन्द्र, उठाती हुई बरसा फिर आ गयी।
मार के मार से विश्व को मार गिराती हुई बरसा फिर आ गयी।
बुन्द के बाण हैं, वीर वधू, बरसाती हुई बरसा फिर आ गयी ॥"[34]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों ने अपनी काव्य रचनाओं में अलंकारों के विविध प्रयोग किये। सनेही जी का ध्यान शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों की ओर विशेष रूप से गया। हितैषी जी की रचनाएँ प्राय सभग-श्लेष युक्त सुन्दर वर्ण संयुक्त दोष रहित गुणयुक्त एवं अनेक भंगिमाओं से विभूषित हैं अनूप शर्मा के काव्य में रिक प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में

दृष्टिगत होती है। उनके काव्य में अलंकारों का आवरण अथवा अलंकारिक चमत्कार का बाहुल्य है और कहीं-कहीं काव्य चित्र अलंकारों के लोखटे मे फिट हो गये हैं। उनके काव्य में जहाँ भी ऐसे प्रयोग हुए हैं, वे कवि के पाण्डित्य प्रदर्शन का ही द्योतन करते हैं। अनूप जी के काव्य में कल्पना और उस कल्पना को आलंकारिक पूर्णत्व प्रदान की शक्ति विद्यमान है। उनके काव्य में कल्पना के प्रवाह में अनेक नवीन उक्तियों एवं नूतन उपमानों के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं। कल्पनाश्रित शब्द चित्रों के निर्माण में कवि इस प्रकार दत्तचित्त हो जाता है कि अनुभूति सहज रूप में गौण सी दिखाई पड़ती हैं। हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेष' के काव्य में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होती है। श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' के काव्य मे अलंकार-विधान स्वाभाविक एवं प्रकृत प्रसंगों के अनुरूप है। शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्य में प्रायः सभी अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग मिल जाते हैं। द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' के काव्य में भी साधारणतः सभी अलंकारो के प्रयोग मिल जाते हैं, परन्तु उनकी विशेष रुचि 'अन्योक्ति' में दृष्टिगत होती है। 'रसिकेन्द्र' ने अन्योक्तियों के माध्यम से युगीन राजनैतिक समस्याओ को विशेष रूप से समुद्घटित किया।

प्रतीक और बिम्ब— सनेही-मण्डल के कवियों में अनूप शर्मा, हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' और शिशुपाल सिंह 'शिशु' की रचनाओं में प्रतीकों और बिम्बों का स्वच्छ विधान दृष्टिगत होता है। सनेही-मण्डल के कवियों में 'हृदयेश' और शिशु जी का काव्य छायावादी भावधारा से विशेष प्रभावित है। अतएव छायावादी शैली के अनुकरण से इनके काव्य में विम्ब का स्पष्ट एवं स्वच्छ स्वरूप उभर सका है। सनेही-मण्डल के कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों एवं विम्बों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है, जिनमें कवियों की कल्पना का योग परिलक्षित होता है—

"आ रही है इसे भेंटने को चलीं, देखो बली महामृत्यु की बाहें।"[25]

'महामृत्यु की बाहों, के प्रतीक से कवि ने काल की करालता का बोध कराया है।

"अहर्निशा की शतरंज हैं बिछी नरेश प्यादे सब खेल वस्तु हैं,
गये चलाये कुछ देर के लिए हुए इकट्ठे फिर ठौर में॥"[26]

यहाँ कवि ने शतरंज के खेल से सृष्टि की एकरूपता का बिम्ब प्रस्तुत किया है।

"देखकर यौवन नृपति ललाम, कनखियों ने झुक कर किया प्रणाम।
सलज्जित अभिराम अब भी नृत्य निरत नयनों में
चल चितवन का ॥

यहाँ कवि ने रूप तृषित नेत्रों के द्वारा प्रियतम के सौन्दर्य की रसपान क्रिया को अभिव्यक्त किया है, जिसे राजदरबार में उपस्थित राजा के अभिवादन करने की पद्धति को बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास मार्मिक बन पड़ा है।

छन्द– सनेही-मण्डल के कवियों ने छन्दों के विविध प्रयोग किये। उन्होने द्विवेदी-मण्डल की काव्य दृष्टि से प्रभावित होकर नूतन छन्दों को ग्रहण अवश्य किया, परन्तु उनमें प्राचीन छन्दों के प्रति भी मोह बना रहा।

परम्परित छन्द-मात्रिक छन्द– सनेही-मण्डल के कवियों ने मात्रिक छन्दो मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। अनूप शर्मा ने रोला, किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' ने दोहा और हितैषी जी ने 'बैकाली' में विभिन्न मात्रिक छन्दो की रचना कर मात्रिक छन्दों के सृजन में योग दिया। अनूप शर्मा ने 'फेरि-मिलिबो' की रचना रोला छन्द में की। उनके 'फेरि-मिलिबो' काव्य का प्रारम्भ राधिका छन्द से हुआ है, परन्तु कथा-प्रवाह के लिए कवि ने आगे रोला को ही ग्रहण किया, जो ब्रजभाषा काव्य की परम्परा का अनुगमन कहा जायेगा। हितैषी जी के 'बैकाली' काव्य संग्रह में ६ मात्राओं से लेकर २४ मात्राओं तक के अनेक छन्द प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार हितैषी जी ने 'मजदूर' नामक रचना में ३, ३ छन्दों को मिलाकर गेय पदों की भी रचना की। जैसे–

"ओ मजदूर ! ओ मजदूर !
तू ही सब चीजों का कर्ता
तू ही सब चीजों से दूर,
ओ मजदूर ! ओ मजदूर ॥"[28]

वर्णिक-छन्द–सनेही-मण्डल के कवियों ने वर्णिक छन्दों के अन्तर्गत त्रोटक वशस्थ, सवैया और घनाक्षरी के प्रयोग किये। जिस समय हिन्दी काव्य संसार में हरिवंशराम बच्चन ने मधुशाला का रंग जमाया, उसी समय सनेही-मण्डल के अभिराम शर्मा ने 'विजय-विहार' में सनेही मण्डलीय रग को इस प्रकार मिश्रित किया कि उस छन्द को पढकर लोग मस्ती में तन्मय हो जाते थे यथा

संज्ञा दी गयी है। अनूप शर्मा ने 'वंशस्थ' छन्द का प्रयोग 'वर्द्धमान' महाकाव्य में किया।

सनेही जी ने शृंगार कालीन मुक्तक काव्य परम्परा का अनुगमन करते हुए कवित्त और सवैया छन्दों में खड़ी बोली को ढालने में स्तुत्य प्रयास किया। सनेही जी ने खड़ी बोली में समस्यापूर्ति की एक नयी परम्परा प्रारम्भ कर इन छन्दों को वही प्रतिष्ठा प्रदान की, जो इन्हें व्रजभाषा मे प्राप्त थी। वस्तुत: खड़ी बोली काव्य में इन छन्दों का आज जो विकसित रूप दिखाई पड़ता है, उसमें सनेही जी का प्रयास कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि इन छन्दों की प्रवृत्ति को सनेही जी का प्रोत्साहन न मिला होता, तो शायद खड़ी बोली काव्य में प्राचीन छन्दों के प्रयोग की परम्परा इतने सशक्त रूप में प्रस्तुत न हो पाती। खड़ी बोली के किसी भी कवि का संभवत: ही घनाक्षरी छन्द शिल्प पर उतना अधिकार हो, जितना कि सनेही जी का दिखाई पड़ता है।

सनेही जी के पश्चात् जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' का नाम भी खड़ी बोली के सवैया छन्दकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में उन्होंने सनेही जी से आगे बढ़कर कुशलता दिखाई है। खड़ी बोली के कवित्त और सवैया छन्दों में उन्होंने अद्भुत सरसता, माधुर्य एवं लोच का विन्यास किया। वस्तुत: खड़ी बोली को हितैषी जी ने व्रजभाषा छन्द सवैया सुधा का जैसा रसास्वादन कराया है, वैसा हिन्दी के किसी अन्य कवि से संभव नहीं हो सका। इसीलिए पं० श्री नारायण चतुर्वेदी ने उन्हें 'घनाक्षरी और सवैया का बादशाह' कहा है।[30] सवैया छन्द में उप अन्त्यानुप्रास पद्धति के प्रयोग का श्रेय हितैषी जी को ही प्राप्त है। उन्होंने छायावादी काव्य की मधुरता को खड़ी बोली के सवैया छन्द में अवतरित कराने का प्रयास किया। सवैया को परिमार्जित करते हुए हितैषी जी ने लय के आश्रम से उसे गणात्मकता के दुरूह बन्धन से मुक्त कर दीर्घ से लघु रूप करके पढ़ने की परम्परा चलाई, जिससे वह गेय एवं मुक्तक छन्दों की कोटि में समाविष्ट हो गया। उन्होंने सवैया छन्द के प्राय: समस्त भेदों में अपनी रचनाएँ रचीं। हितैषी जी का सर्वाधिक प्रिय सवैया 'मत्तगयंद' था।

अनूप शर्मा का नाम घनाक्षरी छन्द में वीर रस के प्रयोक्ता के रूप मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। घनाक्षरी छन्द का बन्धन दुरूह होता है अतएव अनूप जी ने पदपूर्ति हेतु भाषा के मनमाने प्रयोग भी किये हैं उन्होंने छन्दों में तुक का निर्वाह प्राय: सर्वत्र सुन्दर ढंग से किया है। यथा

"निपट कुमार शिखि वाहन कुमार सम,
शेले शूल शक्ति के प्रहार से डराता है।
क्षण दन्त अब भी गणेश दुग्ध पायो अरे,
देख गज वदन समद डकराता है।
धूल धूसरित है हमारे भोलानाथ इन्हें,
जान कृत्तिवास सिंह तुल्य समुहाता है।
आर्य सिंह वाहिनी समर अवगाहिनी है,
थम-थम ठहर-ठहर कहाँ जाता है॥"[31]

प्रणयेश शुक्ल ने कवित्त छन्द में "विजया-विहार' का ऐसा मनोरम सृजन किया कि उनकी यह रचना अपने समय में अत्यन्त लोकप्रिय रचना के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

नवीन छन्द–सनेही-मण्डल के कवि परम्परित छन्दों के साथ नवीन छन्दो के प्रयोग में भी तत्पर रहे। सनेही जी छन्द के अन्तिम चरण पर मुग्ध होने के कारण सफल सूक्तिकार भी बन गये। इसी वैशिष्ट्य के कारण उन्होने हिन्दी के बहु प्रचलित छन्दों को उर्दू ग़ज़ल के समकक्ष रखकर कवि सम्मेलनो के माध्यम से छन्दों का विशेष प्रचार किया। सनेही जी ने हिन्दी में उर्दू छन्दों की रवानी एवं उसकी शैली के विभिन्न प्रयोग किये। उर्दू बहर के लय विधान का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"यह क्या कि मानिनी के मनाने में मस्त हैं।
यह क्या कि दौत्य कर्म दिखाने में मस्त हैं॥"[32]

हिन्दी के कुछ छन्दों के प्रयोग ऐसे हैं, जिनमें अन्तर्यति के पालन पर यदि ध्यान न दिया जाय तो वे उर्दू बहरों के समान लगते हैं। 'अरुण' छन्द एवं 'बहरत बील' की गति इस प्रवृत्ति को प्रमाणित करती है। 'अरुण' में ५, ५, १० पर अन्तर्यति एवं अन्त में ऽ।ऽ आता है। सनेही जी द्वारा इसका प्रयोग इस प्रकार है–

"याद आई वतन की हमें जब कभी अब्रे बारा सी यह चश्मेतर हो गयी।
खून बरसा किया दिल ये बिजली गिरी हाय हालत हमारी बतर हो गयी॥[33]

सनेही जी के काव्य में उर्दू शैली के मुसद्दस एवं मुखम्मस छन्दों के भी प्रयोग हुए। पाँच मिसरों के बन्द को 'मुखम्मस' कहा जाता है। हिन्दी मे उर्दू से अप्रभावित काव्यों में पाँच चरण तो प्राप्त होते हैं, परन्तु तुक का आग्रह मुखम्मस के अनुरूप नहीं होता। मुखम्मस के पाँच चरणों में एक ही तुक अभीष्ट होता है सनेही जी के काव्य में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं

"औरों के सुख को दु:ख बिसारे तुम्हीं तो हो।
प्राणों को प्राण अपने सहारे तुम्ही तो हो॥
बिगड़ी दशा को अब के सँवारे तुम्ही तो हो।
मरने न देते भूख के मारे तुम्हीं तो हो।
सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो॥[34]

सनेही जी ने हिन्दी छन्दों में नूतन प्रयोग भी किये। जैसे—

"चबाई चबाव से चूके नहीं, किसकी नहीं बातें सहीं कह दीजिये।
रही सो कहीं न रही सो कहीं, अब क्या कहने को रहीं, कह दीजिये॥
सनेही न तो भी सनेही हुए, भ्रम से ही सनेही कही कह दीजिये।
नहीं नहीं में, नहीं साफ है नहीं, हाँ कहिए कि नहीं कह दीजिये॥"[35]

इस छन्द में ८ जगण + गुरू का क्रम है, जिसके लक्षण किसी भी छन्द ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते। सनेही जी ने इसका कोई नामकरण भी नही किया। अत: डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने इसे 'सनेही-सवैया' के नाम से सम्बोधित किया है।[36]

सनेही जी के समान हितैषी जी भी उर्दू छन्दों के ज्ञाता थे। हितैषी जी ने सवैया छन्द में उप अन्त्यानुप्रास का विशेष रूप से प्रयोग किया। यह उप अन्त्यानुप्रास उर्दू शैली के अन्तर्गत ग़ज़ल में प्रयुक्त काफियों का ही एक हिन्दी नाम है।

वस्तुत: सनेही-मण्डल के कवियों ने हिन्दी छन्दों के विकास में दो महत्त्व-पूर्ण कार्य किये। प्रथम उर्दू छन्दों का हिन्दीकरण, द्वितीय कवित्त और सवैया छन्दों की खड़ी बोली में अवतारणा। आधुनिक युग में ग़ज़ल और रूबाई के अतिरिक्त उर्दू के अधिकांश छन्दों के प्रयोग को विकसित करने में सनेही-मण्डल के कवियों ने अथक प्रयास किया। कवित्त और सवैया शैली को ब्रजभाषा से खींच कर खड़ी बोली में प्रयुक्त कराने में इन कवियों ने सराहनीय योग दिया। खड़ी बोली में सवैयों की गणात्मकता अवरोधक बनती थी, जब कि ब्रजभाषा में ऐसी लोच थी कि शब्दों और मात्राओं को घटा बढ़ाकर छन्द पाठ कर लिया जाता था। परन्तु सनेही जी और हितैषी जी ने खड़ी बोली में भी गणात्मकता के स्थान पर लयात्मकता को ग्रहण कर सवैया छन्द के सृजन को खड़ी बोली में सुगम कर दिया। इन दोनों कवियों ने उर्दू के रदीफ़ और काफ़ियों का सवैया के अन्तर्गत प्रयोग किया। सारांशत: सनेही-मण्डल के कवियों ने कवित्त और सवैया छन्दों को खड़ी बोली के छन्द के रूप में संस्कारित करके लोकप्रियता प्रदान की। मुक्त छन्द रचना की जो प्रवृत्ति परवर्ती हिन्दी काव्य में ग्रहीत हुई उसे सनेही-मण्डल के कवियो

ने अवश्य स्वीकार किया, परन्तु यदि मुक्त छन्द में लयात्मक स्वर संधान का अभाव दृष्टिगत हुआ, तो वह उनके लिए ग्राह्य नहीं बन सका।

काव्य-गुण– सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में प्रायः सभी गुण प्राप्त होते हैं। प्रसाद, ओज और माधुर्य का यथा सन्दर्भ निदर्शन सनेही-मण्डल के काव्य में मिलता है। स्वयं सनेही जी के काव्य में सभी काव्य गुणों का विधान हुआ है। भाषा के ओज गुण का एक उदाहरण प्रासंगिक होगा–

"तुम होगे सुकरात, जहर के प्याले होंगे।
हाथों में हथकड़ी, पदों में छाले होंगे॥
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे।
होगे तुम निश्चेष्ट इस रहे काले होंगे॥"[37]

हृदयेश जी के काव्य से माधुर्य गुण का एक उदाहरण इस प्रकार है–

"रेशम घूँघट खोल, कली हिम मिस मुसकाई।
गदराए यौवन उपवन की छवि, देत अनंग दुहाई॥
मदमाती रूप की सरिता चढ़ी-पी-लेती हिलोरें सुहाई॥"[38]

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' का काव्य प्रमुखतः प्रसाद गुण से युक्त है। यथा–

"व्योम को छूने चला तो गिरि शृंखला से टकरा गया हूँ मैं।
नापते-नापते माप व्यथा की जमीन के नीचे चला गया हूँ मैं॥
सिन्धु की थाह जो लेने चला, कभी तो लहरों में समा गया हूँ मैं।
देंगी चिताएँ बता कभी जीवन में जो सुकीर्ति कमा गया हूँ मैं॥"[39]

इस प्रकार सनेही-मण्डल के कवियों की शिल्प चेतना में प्राचीन परम्परा का पोषण तो हुआ ही, साथ ही द्विवेदी युगीन और छायावादी काव्य प्रवृत्तियों का भी समाहार हुआ। मण्डलीय काव्यादर्शों के अनुरूप नूतन प्रयोगों से तो वह अनुप्राणित हुआ ही। भाषा के प्रति सनेही-मण्डल के कवियों का दृष्टिकोण स्वस्थ रहा। उन्होंने जहाँ द्विवेदी युगीन खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में ग्रहण किया, वहीं व्रजभाषा में भी काव्य सृजन कर अपने को परम्परा से सम्पृक्त रखा। सनेही-मण्डल के कवियों ने व्रज-भाषा के माधुर्य को खड़ी बोली में प्रतिष्ठापित किया। उन्होंने उर्दू और फारसी के प्रयोग से भाषा के शान-बान को और भी विकसित किया। अलंकारों के प्रयोग में सनेही-मण्डल के कवियों ने उदारता पूर्वक अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग किये। सनेही-मण्डल के सभी कवियों में मात्र अनूप शर्मा का ही काव्य अलंकारों से बोझिल दिखाई पड़ता है। प्रतीकों और बिम्बों के प्रयोग में अनूप शर्मा हृदयनारायण पाण्डेय हृदयेश

शुक्ल 'तरल' और शिशुपाल सिंह 'शिशु' ने विशेष सफलता प्राप्त की। 'हृदयेश' और 'शिशु' के काव्य में छायावादी काव्य बिम्बों की छटा के दर्शन होते हैं। छन्द: प्रयोग की दिशा में सनेही-मण्डल के कवियों ने अभिनव प्रयोग किये। उर्दू छन्दों के प्रयोग से हिन्दी छन्दों को गतिशील बनाने मे सनेही जी और हितैषी जी ने विशेष योग दिया। ब्रजभाषा के कवित्त और सवैया छन्दों को खड़ी बोली में प्रतिष्ठापित कर सनेही-मण्डल के कवियो ने एक अभिनव प्रयोग किया, जिससे खड़ी बोली में भी ब्रजभाषा के समान लयात्मकता का समावेश हुआ। सवैया और घनाक्षरी को खड़ी बोली मे परिष्कृत करने का जो विशेष प्रयास हितैषी जी ने किया, वह सनेही-मण्डल के काव्य का एक युगान्तर कारी कार्य कहा जायेगा। मुक्त छन्द की रचना के युग में भी सनेही-मण्डल के कवियों की छन्दोबद्ध रचनाएँ हिन्दी काव्य शिल्प को एक नयी चेतना प्रदान कर सकी, जो उनके मण्डलीय अवदान का निजी वैशिष्ट्य है। काव्य गुणों और काव्य की विभिन्न शैलियों में रचना कर सनेही-मण्डल के कवियों ने अपनी बहुज्ञता का सुस्पष्ट परिचय दिया। कवि सम्मेलनों में काव्य-पाठ के निमित्त सनेही जी की रचनाओं में उनके तेवर की जो छाप लगी है, वह भी उनकी मौलिकता है। ओजपूर्ण रचनाओ मे सनेही जी के तेवर की यह शैली अधिक मुखर बन पड़ी है। उर्दू मिश्रित खड़ी बोली रचनाओ में भी सनेही जी की तेवर की शैली का अवलोकन किया जा सकता है। इन रचनाओं में जैसे सनेही जी के व्यक्तित्व की पूर्ण छवि अवतरित हो गयी है।

समग्रत: सनेही-मण्डल के कवियों की शिल्प चेतना भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलों की शिल्प चेतना को समन्वित रूप में पल्लवित करती हुई आगामी छायावादी और प्रगतिवादी काव्य धाराओं के लिए दिशा निर्देश करती हुई दिखाई पड़ती है। उसमें परम्परा के समाहार और नवीनता के उन्मेष की अपूर्व शक्ति परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ

१. वचनेश मिश्र : शबरी पृ० ५१
२. किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' : ब्रजचन्द्र—विनोद, पूर्वार्द्ध, पृ० १
३. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : कृषक—क्रन्दन, पृ० ३०
४. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : कसक, पृ० ६२
५. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : करुणा—कादम्बिनी, पृ० ६६
६ शिशुपाल सिंह शिशु दो चित्र पृ० ४७
७ डॉ० . गुप्त रसिकन्द्र' मनहर—वीर ज्योति पृ० ६४

८. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : दो–चित्र, पृ० ४७
९. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : कल्लोलिनी, पृ० ३
१०. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : सुषमा, पृ० २२
११. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मेघमाला, पृ० ३२
१२. अनूप शर्मा : वर्द्धमान, पृ० ११७
१३. प्रणयेश शुक्ल : कालिन्दी, पृ० ६९
१४. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : मधुरिमा, पृ० २२
१५. प्रणयेश शुक्ल : निशीथिनी, पृ० ६६
१६ बचनेश मिश्र : शबरी, पृ० ५१
१७. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : करुणा–कादम्बिनी समर्पण
१८. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ० ४९
१९. अनूप शर्मा : फिरि–मिलिबो, पृ० ९२
२०. अनूप शर्मा : वर्द्धमान, पृ० ६०
२१. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मानव, पृ० ६१
२२. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : परीक्षा, पृ० ७
२३. शिशुपाल सिंह 'शिशु' : अपने पथ पर, पृ० १६–१७
२४. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : दर्शना पृ० ५७
२५. श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' : मानव, पृ० १
२६. अनूप शर्मा : वर्धमान, पृ० ३०५
२७. हृदयनारायण 'हृदयेश' : कसक, पृ० १८
२८. जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' : बैकाली, पृ० ९५
२९. अभिराम शर्मा : विजया, पृ० ३०
३०. पं० श्री नारायण चतुर्वेदी : दैनिक जागरण कानपुर रजत जयन्ती अङ्क, १९७५ ई०, पृ० ४६
३१. अनूप शर्मा : शर्वाणी, पृ० ५८९
३२. त्रिशूल : त्रिशूल–तरंग, पृ० ७१
३३. उपरिवत्, पृ० १६
३४. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : सरस्वती, अक्टूबर, १९१४, पृ० ५५३
३५. डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २६३
३६. उपरिवत्
३७. त्रिशूल : त्रिशूल–तरंग पृ० १
३८ हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' : सुषमा पृ० २२
३९ श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' मानव पृ० १९

६

सनेही-मण्डल के कवियों का अवदान

सनेही-मण्डल के काव्य की वस्तु और शिल्प चेतना में भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलों के काव्य के सम्मिलित संस्कार पल्लवित हुए हैं। फलत सनेही-मण्डल के कवियों की उपलब्धियों में भी भारतेन्दु और द्विवेदी मण्डलो की काव्य प्रवृत्तियों का समन्वयात्मक विकास दिखाई पड़ता है। इसके साथ ही सनेही-मण्डल के काव्य में छायावादी और प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियो का भी आंशिक उन्मेष परिलक्षित होता है। इस प्रकार सनेही-मण्डल के काव्य के अवदान में मण्डलीय काव्य चेतना के अतिरिक्त भारतेन्दु काल से प्रगतिवादी काल तक के विविध काव्य संस्कारों को रेखांकित करना समीचीन होगा।

सनेही-मण्डल के काव्यदर्शों के अन्तर्गत स्वयं सनेही जी के आदर्श उनके मण्डल के कवियों को नेतृत्व प्रदान के कारण विशेष महत्वपूर्ण हैं। काव्य के स्वरूप के अन्तर्गत सनेही जी ने काव्य का प्राणतत्त्व अनुभूति को स्वीकार किया। अनूप शर्मा ने काव्य को हृदयगत गहनतम स्रोत से उद्भूत भावो का आरोहावरोह स्वीकार कर उसमें सत्यं, शिवं और सुन्दरं को अन्तर्निहित होने का समर्थन किया। उन्होंने काव्य को मात्र शब्दार्थ तक ही सीमित न मानकर उसे वास्तु और स्थापत्य में प्रदर्शित भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार कर एक नवीन उद्भावना की। अनूप जी की धारणा थी कि कवि की अनुभुति सामान्य मानव से तीव्र होने के कारण उसकी सूक्ष्म अन्तर्भेदनी दृष्टि रागात्मक तत्त्वों से संस्पर्शित होकर वाणी द्वारा अभिव्यक्त होती है। उन्होंने कवि के हृदय-कोश की उदारता और व्यापकता के प्रति भी संकेत किया। 'हृदयेश' ने भी काव्य का प्राणतत्त्व हृदय की अनुभूति को स्वीकार करते हुए कवि के हृदयस्थ मधुर पुलक स्पन्दन को काव्य सृजन का प्रमुख कारण स्वीकार किया। उन्होंने काव्य सौन्दर्य में विश्व के रहस्यात्मक सौन्दर्य तत्त्व का भी समावेश किया। कवि कर्म के सम्बन्ध में 'हृदयेश' का मौलिक सिद्धान्त है कि स्वाभाविक जीवनानुभूति का साधारणीकरण जब पाठक कर सके, तभी कवि कर्म की सफलता मानी जानी चाहिए। 'तरल'

की दृष्टि में काव्य का सृजन अतृप्तावस्था में होता है, फिर भी कवि की अनुभूति पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं हो पाती। प्रणयेश शुक्ल ने कवि कर्म के सम्बन्ध में यह धारणा व्यक्त की कि कवि को भावोदधि का संतरण कर हृदय के उद्‌गारों को इस प्रकार अभिव्यक्त करना चाहिए कि उसमें स्थूल और सूक्ष्म दोनों तत्व एकाकार हो जाय। काव्य की आत्मा के विवेचन मे सनेही जी ने कोई मौलिक प्रदेय न प्रस्तुत कर मात्र रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। अनूप शर्मा ने परम्परा को ग्रहण करते हुए काव्य में वर्णित अदृश्य चित्र एवं अश्रव्य नाद को भी काव्य की आत्मा स्वीकार कर इस क्षेत्र में मौलिकता प्रकट की। वचनेश मिश्र ने काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के अन्य कवियों से पृथक मत प्रस्तुत करते हुए वात्सल्य को काव्य की आत्मा स्वीकार किया। काव्य-हेतु के सम्बन्ध मे सनेही जी के कुछ सिद्धान्त सर्वथा नवीन कहे जा सकते हैं। उन्होंने कवि सम्मेलनों के प्रचार को काव्य-हेतु के रूप में मान्यता देकर एक नवीन आदर्श स्थापित किया। काव्य-हेतु के सम्बन्ध में उनके शेष सिद्धान्त अधिकांशत परम्परानुमोदित हैं, जिनमें उत्पाद्या प्रतिभा को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। अनूप शर्मा ने सनेही जी का अनुसरण करते हुए उत्पाद्या प्रतिभा को काव्य-हेतु स्वीकार किया। प्रणयेश शुक्ल ने सनेही जी का तो अनुगमन किया ही, साथ ही उन्होंने पूर्व संस्कारार्जित सहजा प्रतिभा को भी काव्य-हेतु के रूप में मान्यता दी। उन्होंने आर्थिक सम्पन्नता, कवियों के सम्पर्क, स्वभाव की कोमलता और वंश परम्परागत प्राप्त कवित्व शक्ति को भी काव्य-हेतु के रूप में स्वीकृति प्रदान कर सनेही-मण्डल के अन्य कवियों से अपना भिन्न आदर्श प्रस्तुत किया। काव्य-प्रयोजन के सम्बन्ध में सनेही जी का कोई विशेष योग नहीं दृष्टिगत होता। परन्तु उनके मण्डल के अन्य कवियों ने इस सम्बन्ध में व्यापक रूप में विचार किया। अनूप शर्मा की दृष्टि में काव्य का मुख्य प्रयोजन मानव जीवन में नैतिकता, आनन्द, सौन्दर्य एवं शुचिता का संचार करना है। काव्य-प्रयोजन के सम्बन्ध में 'हृदयेश' के विचार अपेक्षाकृत अधिक मौलिक स्वस्थ कहे जा सकते हैं। उनके अनुसार राष्ट्र का सांस्कृतिक उत्थान, मानव के संतप्त जीवन में सुख का संचार और आध्यात्मिक सौन्दर्य एवं माधुर्य को मानव के जीवन में उत्पन्न कराना काव्य का मुख्य प्रयोजन है। काव्य के वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के सभी कवियों में 'हृदयेश' ने व्यापक रूप में विचार किया। उनके अनुसार दैनिक जीवन की विभिन्न घटनाएँ, जिनमें समस्त रागात्मक भाव समाहित हों, काव्य के वर्ण्य-विषय के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिए। तरल जी की दृष्टि इस सन्दर्भ

में नैराश्य भावना से ओत प्रोत है। उनके अनुसार वेदना, दीनता, अकिंचनता नैराश्य आदि काव्य के मार्मिक विषय हो सकते हैं। काव्य-भाषा के सम्बन्ध में सनेही जी की दृष्टि व्याकरण सम्मत, सुगठित, सन्तुलित एवं मुहावरेयुक्त भाषा के ग्रहण के प्रति थी। 'हृदयेश' ने भाषा में सरसता, कोमलता, मधुरता एवं जीवन्तता का विशेष रूप से समर्थन किया। अभिराम शर्मा ने भाषा के व्यवस्थित, व्याकरण सम्मत और प्रसादादि गुणों से युक्त रूप को मान्यता दी। अलंकार के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के कवियो में सनेही जी, अनूप शर्मा और 'हृदयेश' ने अपने मत प्रस्तुत किये। परन्तु सनेही जी और हृदयेश जी ने परम्परित आदर्श को ग्रहण करते हुए काव्य में अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग का समर्थन किया। अनूप शर्मा ने अलंकारों के उद्देश्य पर अपने चिन्तन को केन्द्रित कर एक नवीन दृष्टि प्रदान की। उनके अनुसार जब साधारण शब्द भावाभिक्ति में असक्षम हो जाते हैं, तभी गहन भावों को अभिव्यक्ति करने के लिए अलंकारों की आवश्यकता पड़ती है। छन्द के सम्बन्ध में सनेही-मण्डल के कवियों ने कुछ अंशों में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। सनेही जी ने छन्द में गति की अनिवार्यता पर बल दिया। अनूप शर्मा की दृष्टि में छन्द कवि के मन की वीणा के बाह्य रूप हैं। वचनेश मिश्र ने छन्द का सांगोपांग विवेचन करते हुए यह धारणा व्यक्त की कि छन्द काव्य के लिए अनिवार्य है और छन्द का अनिवार्य तत्त्व गति अथवा लय है। स्फुट काव्यादर्शों में सनेही जी ने समस्यापूर्ति विषयक काव्य का समर्थन किया। उनके अनुसार कवि प्रतिभा की कसौटी समस्यापूर्ति है, जिससे कवि की सृजन क्षमता की परख सम्भव होती है। समस्यापूर्ति की रचना एक प्रतिभावान कवि द्वारा ही संभव होती है। सनेही जी का यह आदर्श उनके युग के सभी काव्य चिन्तकों से भिन्न एवं मौलिक कहा जायेगा। समस्यापूर्ति विषयक उनका यह आदर्श उनके मण्डल के निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी रहा। डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' के काव्यानुभूति सम्बन्धी विचार सनेही-मण्डल के अन्य कवियों से अधिक सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक हैं। उनकी दृष्टि में अनुभूति ही काव्य का मूल तत्त्व है, जिससे प्रेरित होकर कवि अनायास ही काव्य सृजन में तत्पर होता है।

वस्तुतः सनेही-मण्डल के कवियों के काव्यादर्श अधिकांशतः परम्परानुमोदित हैं, परन्तु कहीं-कहीं उनमें नूतन उद्भावनाएँ भी परिलक्षित होती हैं। उनके काव्यादर्शों पर युगीन साहित्यिक वातावरण का संस्कार भी दृष्टिगत होता है।

सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी और 'निशंक' ऐसे कवि हैं, जिनका

साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष योग रहा। इस सन्दर्भ में सनेही जी द्वारा सम्पादित 'सुकवि' का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिसके द्वारा भारत के अनेक हिन्दी कवियों को काव्य सृजन के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। 'सुकवि' के द्वारा सनेही जी ने अपने मण्डल के कवियों का संगठन बनाकर उन्हें एक मंच पर एकत्रित किया। सनेही-मण्डल के कवियों की इस संगठन प्रक्रिया में 'सुकवि' का महत्वपूर्ण अवदान है। 'सुकवि' के समस्यापूर्ति, स्तम्भ के माध्यम से सनेही जी ने अनेक कवियों को समस्या-पूर्ति-काव्य सृजन के लिए प्रेरित किया। इस पत्रिका के द्वारा सनेही जी ने विभिन्न विरोधी विचारों वाले कवियों को एक सूत्र में बांधा और उनमे ऐक्य भावना का यथासंभव संचार किया। 'सुकवि' के 'समस्यापूर्ति' स्तम्भ के प्रकाशन से उनके इस प्रयास को पर्याप्त सफलता मिली। 'सुकवि के अतिरिक्त सनेही जी ने 'कवि' के प्रकाशन द्वारा भी समस्यापूर्ति काव्य सृजन का विशेष प्रचार कर अनेक कवियों को संगठित किया। वचनेश मिश्र ने 'भारत-हितैषी' पत्र के द्वारा नीति, धर्म और कांग्रेसी सिद्धान्तों का प्रचार किया। परन्तु 'सुकवि' को हिन्दी काव्य जगत में जो आदर मिला, वह 'भारत-हितैषी' को नहीं प्राप्त हो सका। डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' द्वारा संपादित 'सुकवि-विनोद' में सुकवि की शैली का अनुगमन दिखायी पड़ता है। 'सुकवि' के बाद आज 'सुकवि-विनोद' के द्वारा सनेही-मण्डल की काव्य शैली का चित्र उभर आता है। 'सुकवि' के समान इसमें भी समस्या-पूर्ति का एक स्थायी स्तम्भ रहता है। वस्तुतः 'सुकवि-विनोद' के द्वारा सनेही-मण्डल की काव्य परम्परा आज भी जीवित है।

सनेही-मण्डल के कवियों ने सामान्य दार्शनिक सिद्धान्तों को ग्रहण कर उनके प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की। भारतीय परम्परा के विविध दार्शनिक विचारों को सनेही-मण्डल के अधिकांश कवियों ने अभिव्यक्ति दी। इन कवियों ने जग की नश्वरता, जीव की कुटिलता, प्रभु की कृपालुता आदि का स्मरण कर आधुनिक-युग में भक्ति कालीन काव्य परम्परा को जीवित रखने का प्रयास किया। दार्शनिक विचारों के अभिव्यंजन में सनेही-मण्डल के अन्य कवियों की अपेक्षा 'हृदयेश' और 'प्रणयेश' ने विशेष मौलिकता दिखायी। इन दोनों कवियों के दार्शनिक सिद्धान्तो पर छायावादी काव्य का विशेष प्रभाव पड़ा, जिससे दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन में एक अभिनव दृष्टि का समावेश संभव हुआ। द्विवेदी-युग मे इस प्रकार के दार्शनिक विचार छायावादी कवियों को प्रेरित करने में विशेष सहायक सिद्ध हुए। सनेही-मण्डल के कवियों ने परम्परित दार्शनिक विचारों को द्विवेदी-युग के

सनेही-मण्डल के काव्य का उल्लेखनीय प्रदेश कहा जा सकता है। 'शबरी' काव्य में वचनेश ने केवल राम की आराधिका शबरी के तपस्विनी जीवन चरित्र को ही नहीं ग्रहण किया, प्रत्युत उन्होंने युग बोध से संवेदित होकर गांधीवादी अछूतोद्धार एवं स्वदेशी भावनाओं का भी उसमें नियोजन किया। इस प्रकार 'शबरी' का विषय परम्परित होते हुए भी नवयुग को स्वर प्रदान करता है। 'शबरी' की रचना द्वारा कवि ने हिन्दू संस्कृति को राम का आनन्दमय मधुर चरित्र भी प्रदान किया।

सनेही-मण्डल के काव्य में रीतिकाल से लेकर छायावाद-युग तक के विविध श्रृंगारिक एवं सौन्दर्य परक काव्य-विषय गृहीत हुए। उर्दू फारसी के संस्कार से सनेही जी का श्रृंगार काव्य पूर्ववर्ती कवियों से अधिक प्रदीप्त है और उसमें हृदय को स्पर्श करने की शक्ति विद्यमान है। परन्तु उर्दू कवियों के समान सनेही जी ने प्रेम का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन न कर उसका स्वाभाविक चित्रण किया। सनेही-मण्डल के कवियों में 'हृदयेश' 'हितैषी' और 'प्रणयेश' के काव्य में श्रृंगार और प्रेम का वर्णन छायावादी भावभूमि पर आधृत है, जिसमें बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से हुआ है। सनेही-मण्डल के इन कवियों की सौन्दर्य व्यंजनाएं छायावादी कवियों को सौन्दर्य के सूक्ष्म तत्त्व बोध की ओर प्रेरित करने में सहायक कही जा सकती हैं। 'तरल' के काव्य में वैयक्तिक सूक्ष्म एवं अशरीरी प्रेम की भाव लहरियाँ तरंगायित हैं, जिसमें कवि की विरहानुभूति की ऐकान्तिक अन्तर्मन की करुण स्वर लहरी हृदय को व्यथित करने में समर्थ है। वस्तुतः सनेही-मण्डल के कवियों ने परम्परित श्रृंगारिक विषयों को ग्रहण करते हुए भी छायावादी कवियों के लिए नूतन भाव भूमि की आधार शिला स्थापित की। सनेही-मण्डल के कवियों की एक मौलिक देन, 'विजयावाद' भी है। हालावादी कवियों ने जब हिन्दी श्रृंगार-काव्य में 'हालावाद' का समर्थन किया, तो सनेही-मण्डल के प्रणयेश शुक्ल और अभिराम शर्मा ने उसके समानान्तर 'विजयावाद' की परम्परा का सूत्रपात किया। 'विजयावाद' सनेही-मण्डल के कवियों की मौलिक उद्भावना है। हालावादी कवियों के समान इन दोनों कवियों ने 'विजयावाद' के माध्यम से प्रेम और मस्ती की काव्यधारा प्रवाहित की।

सनेही-मण्डल के कवियों का एक महत्त्वपूर्ण योग समस्या पूर्ति-काव्य क्षेत्र में रहा। उन्होंने समस्यापूर्ति के काव्य सृजन का प्रचार कर और कवि सम्मेलनों के द्वारा उसे जन-जन तक प्रेषित करने का जो प्रयास किया, वह सनेही मण्डल की एक विशेष उपलब्धि है भारतेन्दु-युग तक तो समस्यापूर्ति

काव्य सृजन की परम्परा चलती रही, परन्तु द्विवेदी-युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी के निर्देश से अधिकांश कवियों ने इस ओर से अपना मुख मोड़ लिया था। सनेही जी ने पुनः समस्यापूर्ति-काव्य परम्परा को पोषित कर उसमें विविध परम्परित और नवीन काव्य विषयों का समावेश कर उसे कवि प्रतिभा का मापदण्ड घोषित किया। सनेही-मण्डल के कवियों की समस्यापूर्ति काव्य परम्परा में एक प्रमुख वैशिष्ट्य उनका चमत्कृति एवं अनुभूति तत्वो से संचलित होना है।

सनेही-मण्डल के काव्य में द्विवेदी-मण्डल के काव्य की व्यक्तिप्रशस्ति काव्य परम्परा का काव्य पल्लवन हुआ। भारतेन्दु युगीन राजभक्ति की भावना को सनेही-मण्डल के कवियो ने व्यक्ति प्रशस्ति एवं वीर प्रशस्ति में परिवर्तित कर हिन्दी प्रशस्ति-काव्य परम्परा में युगान्तर उपस्थित किया। सनेही-युग में भारत में सुयोग्य शासकाभाव में भारतेन्दु युगीन राजभक्ति भावना भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों के प्रति उन्मुख हुई, जिससे राष्ट्रीय भावना को और सुदृढ़ सम्बल प्राप्त हुआ।

सनेही-मण्डल के काव्य में राष्ट्रीय भावना का ओजस्वी एवं क्रान्तिकारी रूप प्रकट हुआ। वस्तुतः प्रगतिवादी काव्य परम्परा के प्रवर्तन का श्रेय सनेही-मण्डल के नायक कवि 'त्रिशूल' को प्राप्त होना चाहिए। क्योंकि हिन्दी काव्य के इतिहास में सर्वप्रथम 'त्रिशूल' ने सन् १९२१ में 'साम्यवाद' की रचना कर प्रगतिवादी काव्य चेतना को पल्लवित किया। सनेही जी के काव्य में भारतियों के शोषित रूप का सजीव चित्र प्राप्त होता है। सनेही जी ने इन्हीं शोषितों के द्वारा क्रान्ति के स्वर को ओजस्वी रूप प्रदान किया। सनेही-मण्डल के कवियों में सनेही जी के पश्चात् हितैषी जी के काव्य में भी शोषितों की दयनीय दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी काव्य में सनेही-मण्डल के कवियों ने सर्वप्रथम शोषित वर्ग की क्रान्ति का स्वर गुंजित किया, जिससे परवर्ती हिन्दी काव्य दीर्घ अवधि तक प्रभावित रहा।

सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में सामाजिक दुष्प्रवृतियों के परिहार की भावना का स्वर मुखरित हुआ। सनेही-मण्डल के कवियों का ध्यान समाज सुधार के विभिन्न अंगों की अपेक्षा साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रति विशेष रूप से गया। वस्तुतः साम्प्रदायिक सद्भाव की यह भावना उनकी युग बोध की चेतना का द्योतन करती है। अपने युग की समस्याओं एवं समाज के भविष्य के प्रति उनकी सजग दृष्टि साम्प्रदायिक सदभाव को उनके काव्य में पल्लवित करने मे विशेष सहायक रही सनेही मण्डल के अन्य

कवियों की अपेक्षा वचनेश मिश्र का प्रयास इस दिशा में विशेष क्रियाशील रहा। उन्होंने परिहास-काव्य का सृजन कर सामाजिक कुरीतियों एवं अन्ध-विश्वासों के विभिन्न पक्षों पर निर्मम प्रहार किया और इस प्रकार काव्य के लोकहित के प्रयोजन को पुष्ट किया।

सनेही-मण्डल के काव्य में राष्ट्र की तत्कालीन आर्थिक दशा का जीवन्त चित्रण हुआ है। कृषकों और मजदूरों की कारुणिक आर्थिक दशा के प्रति जितना ध्यान 'सनेही' और 'हितैषी' का गया उतना मण्डल के अन्य कवियो का नहीं। इन दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी काव्य मे भारतीय कृषको और मजदूरो की शोषित, प्रताड़ित एवं दरिद्रयपूर्ण आर्थिक दशा का सजीव चित्रांकन किया। शोषकों के द्वारा भारतीय कृषकों की शोषण पद्धतियों का आधुनिक हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम दर्शन सनेही जी की रचनाओं में प्राप्त होता है। सनेही जी ने अपनी 'साम्यवाद' रचना मे समाजपयोगी आर्थिक नीतियों का निर्धारण भी किया, जिसके मूल में समत्व की भावना रही है।

सनेही-मण्डल के कवियों ने भारतेन्दु और द्विवेदी-मण्डल के कवियो के समान मातृभाषा हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की, फलतः हिन्दी के राष्ट्रीय रूप को सुदृढ़ सम्बल प्राप्त हुआ। सनेही-मण्डल के कवियों ने उर्दू फारसी के शब्दों को ग्रहण करते हुए हिन्दी भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाया, जिससे उसकी शब्द सम्पदा परवर्ती कवियों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई।

सनेही-मण्डल के काव्य में परिहास परक रचनाओं का प्रसारलक्षित होता है। वस्तुतः राष्ट्र और समाज के मध्य मानव जीवन में जो क्रियायें घटित हो रही थीं, उन्हें काव्य में अभिव्यक्त करने के लिए सनेही-मण्डल के कवियों ने परिहास काव्य सृजन को अपेक्षाकृत सशक्त माध्यम समझा। 'हितैषी' ने हास्य की अभिव्यक्ति के लिए 'भड़ौआ' छन्द को अपनाया। हिन्दी के सभी कवियों में 'हितैषी' ने सर्वाधिक संख्या में 'भड़ौआ' छन्दों की रचना की। परिहास काव्य सृजन में सनेही-मण्डल के कवियों में वचनेश मिश्र का योगदान भी मौलिक है। उन्हें तो 'हास्य रसावतार' भी कहा जाता है। वचनेश मिश्र ने अपनी परिहास परक रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों एवं युगीन सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है।

सनेही-मण्डल के कवियों में मात्र सनेही जी ने होली गीतों की रचना कर लोकगीत काव्य में योग दिया उनके मण्डल के अन्य कवियों का लोकगीत काव्य सृजन की में योग नहीं दिखाई पड़ता

सनेही-मण्डल के काव्य में प्रकृति वर्णन के विभिन्न पक्ष दृष्टिगत होते हैं। सनेही-मण्डल के कवियों ने परम्परित प्रकृति-चित्रण करते हुए छायावादी शैली पर आधारित प्रकृति का सौन्दर्यांकन किया है। उनके काव्य में कहीं रीति परिपाटी पर षट्ऋतु वर्णन है, तो कहीं छायावादी काव्य परक सूक्ष्म वायवी एवं मानव सहचरी प्रकृति-प्रिय की छवि राशि काव्य पटल पर बिखरी हुई है। छायावादी कवि पन्त और प्रसादादि के पूर्व प्रकृति सुन्दरी का मधुर, स्निग्ध, कोमल एवं हास्यपूर्ण सौन्दर्यांकन सनेही-मण्डल के कवि 'हृदयेश' और 'हितैषी' के काव्य में हुआ, जिसमें प्रकृति के विविध उपमानो के प्रयोग मानवीय सन्दर्भ में दिखाई पड़ते हैं। अनूप शर्मा के प्रकृति चित्रण का, स्वच्छन्दतावादी काव्य परम्परा की श्रेणी में होने के कारण अलग महत्त्व है। उनके प्रकृति-चित्रण में अनुभूति और कल्पना का विशेष सहयोग दिखाई पडता है।

भाषा के क्षेत्र में सनेही-मण्डल के कवियों का प्रमुख प्रदेय यह रहा कि उन्होंने खड़ी बोली में व्रजभाषा के समान घनाक्षरी और सवैया छन्दो मे कोमल अनुभूतियों को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया। सनेही और उनके दो प्रमुख शिष्यों 'हितैषी' और अनूप शर्मा ने यह सिद्ध कर दिया कि घनाक्षरी और सवैया छन्दों में खड़ी बोली वैसी ही मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली बन सकती है, जैसी कि व्रजभाषा। घनाक्षरी और सवैया छन्दों को खड़ी बोली के अनुरूप बनाने में 'हितैषी' का जो योग रहा, वह आधुनिक हिन्दी काव्य में अद्वितीय है। सनेही जी ने खड़ी बोली, व्रजभाषा, उर्दू और हिन्दुस्तानी में काव्य रचना कर हिन्दी शब्द-भण्डार को सम्पन्न बनाने में विशेष योग दिया। युगीन भाषिक समस्या से संवेदित होकर सनेही-मण्डल के कवियों ने खड़ी बोली को इस प्रकार कोमल रूप दिया कि वह व्रजभाषा की समता करने में सक्षम सिद्ध हुई। उन्होंने व्रजभाषा के लालित्य को खड़ी बोली में इस प्रकार अनुस्यूत किया कि वह आगामी कवियों की सुकोमल भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त काव्यभाषा बन सकी। अनूप शर्मा के व्रजभाषा काव्य में रीतिकालीन चमत्कारी क्लिष्ट शब्द विधान का दर्शन हुआ। 'हृदयेश' ने उर्दू फारसी के शब्द प्रयोगों से हिन्दी भाषा में उर्दू की नज़ाकत और नफ़ासत का समावेश किया।

सनेही-मण्डल के काव्य में विभिन्न काव्य शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। परन्तु सनेही जी की शैली की मौलिकता उनके व्यक्तित्व से निर्मित काव्यपाठ में उनके तेवर में झमकती है। सनेही जी के तेवर की इस शैली में ओज गुण की प्रमुखता से दिखाई पड़ती है

सनेही-मण्डल के कवियों ने अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग पर बल दिया। सनेही जी ने अर्थालंकारों के प्रयोग में विशेष कुशलता दिखायी। वस्तु वर्णन के क्षेत्र में सनेही जी ने प्रकृति उपमानों पर आधारित उत्प्रेक्षा का सफल प्रयोग किया। सनेही जी के अलंकारों का प्रमुख वैशिष्ट्य उनके माध्यम से अभिव्यक्ति मानव एवं प्रकृति के मध्य साहचर्य सम्बन्ध है। सनेही जी और अनूप शर्मा के काव्य में कल्पनाश्रित अलंकारों का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। 'हितैषी' तो अन्त्यानुप्राप्त और उपन्त्यानुप्रास मिलाकर छन्द लिखने की शैली के एक प्रकार से प्रवर्तक ही हैं। अनूप शर्मा के काव्य में चमत्कार पूर्ण अलंकारों का बाहुल्य है, जिसमें उनका पाण्डित्य भी उभरा है। चमत्कार पूर्ण अलंकारों के प्रयोग में कवि की कल्पना प्रसूत शब्द चित्रों के दर्शन प्राप्त होते हैं। वचनेश मिश्र ने सांगरूपक के प्रयोग में विशेष रुचि दिखाई। उन्होंने सांगरूपक के द्वारा विभिन्न दार्शनिक प्रसंगो को सरस बनाने मे योग दिया। 'रसिकेन्द्र' का अन्योक्ति प्रयोग के प्रति विशेष आकर्षण रहा जिसके माध्यम से विभिन्न राजनैतिक सन्दर्भों को अभिव्यक्ति मिली। समग्रत. सनेही-मण्डल के काव्य में अलंकारों का सुष्ठ एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

सनेही-मण्डल के कवियों में अनूप शर्मा, हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' और शिशुपाल सिंह 'शिशु' के काव्य में प्रतीक और बिम्ब विधान के सूक्ष्म रूप दिखाई पड़ते हैं। 'हृदयेश' और 'शिशु' के काव्य में छायावादी शैली के बिम्ब के स्पष्ट एवं सूक्ष्म प्रयोग हुए हैं। इन दोनों कवियों के विम्ब विधान मे उसकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, प्रतिभा और कल्पना का योग दिखाई पडता है। इनके बिम्बात्मक प्रयोग छायावादी कवियों के समान भावों की सूक्ष्मता को स्पष्टता के साथ प्रतिपादित करने में समर्थ रहे हैं।

छन्दः प्रयोग के क्षेत्र में सनेही-मण्डल के कवियों ने परम्परित छन्दो के साथ नवीन छन्दों के भी विविध प्रयोग किये। परम्परित छन्दों में नवीन भाव पुंज का प्रभावी संप्रेषण सनेही-मण्डल के कवियों का छन्दः प्रयोग के क्षेत्र में प्रमुख प्रदेय कहा जा सकता है। इन कवियों ने छन्दः प्रयोग की दिशा में दो महत्त्वपूर्ण कार्य किये। प्रथम, हिन्दी में उर्दू छन्दों का सफल प्रयोग और द्वितीय, कवित्त और सवैया छन्दों का खड़ी बोली में समावेश। आधुनिक काव्य में गज़ल और रुबाई के अतिरिक्त उर्दू छन्दों को हिन्दी मे प्रतिष्ठापित करने का श्रेय सनेही-मण्डल के कवियों को दिया जा सकता है। कवित्त और सवैया छन्द को खड़ी बोली में प्रयुक्त करने में अनूप शर्मा और 'हितैषी' ने जो प्रयास किया वह हिन्दी काव्य के इतिहास में युगान्तरकारी सिद्ध हुआ ... सवैयों की ग ... खड़ी बोली में सवैयों की

रचना में बाधक थी, परन्तु 'हितैषी' ने कवित्त और सवैया छन्दों को गणात्मकता से मुक्त कर लयात्मकता के आधार पर ऐसे नवीन साँचे में ढाला कि खड़ी बोली में रचित कवित्त और सवैया छन्दों में भी कोमलता और माधुर्य का समावेश हो सका। ठाकुर गोपालशरण सिंह ने सुकोमल खड़ी बोली में रचित कवित्त और सवैया छन्दों की जिस परम्परा का पल्लवन किया, उसे सनेही-मण्डल के कवियों ने अपने युग तक प्रसारित किया। यह उल्लेखनीय है कि सनेही-मण्डल के बाद खड़ी बोली में कवित्त और सवैया छन्दों की रचना प्रवृत्ति उत्तरोत्तर अवरुद्ध सी होती गई।

समग्रतः सनेही-मण्डल के कवियों ने काव्य के वस्तु एवं शिल्प पक्षों में जहाँ परम्परा का संपोषण किया, वहीं वे नूतन प्रयोगों के प्रति भी सचेष्ट रहे। भारतीयता स्वाधीनता संग्राम को प्राणवान बनाने वाले गाँधी और लोकमान्य तिलक के स्वर को काव्य के माध्यम से हिन्दी प्रदेश के जन सामान्य तक संप्रेषित करने में सनेही जी और उनके मण्डल के कवियों का समादृत योगदान रहा। सनेही-मण्डल के कवियों ने जहाँ हिन्दी भाषा की क्षमता का संवर्द्धन किया, वहीं हिन्दी काव्य में विषय वैविध्य का भी विधान किया। वे युग बोध के सचेत कलाकार हैं। कल्पना लोक में विचरण करते हुए भी उन्होंने युग यथार्थ को रेखांकित और उद्घाटित करने का उपक्रम किया। इसलिए सनेही-मण्डल के कवियों के काव्य में राष्ट्रीय बोध और नवनिर्माण का सर्वभेदी एवं सशक्त स्वर गुंजायमान है।

परिशिष्ट–१

सनेही-मण्डल के अवशिष्ट कवि

१– शिवदुलारे शर्मा 'शिव' (कानपुर)
२– असीम दीक्षित (कानपुर)
३– श्यामलाल शुक्ल 'चकोर' (सीतापुर)
४– नत्थाराम दीक्षित 'मिलिन्द' (उन्नाव)
५– रामदेव सिंह 'कलाधर' (बस्ती)
६– रसराज नागर (काशी)
७– सेवकेन्द्र त्रिपाठी (झाँसी)
८– राजेन्द्रसिंह 'सुधाकर' (झालावाड़)
९– हरिनारायण हरिजू (कानपुर)
१०– उमादत्त सारस्वत (सीतापुर)
११– गिरिजादयाल 'गिरीश' (लखनऊ)
१२– हरिनन्दन बाजपेयी 'हर्ष' (कानपुर)
१३– कमलेश (कानपुर)
१४– राजा अजय वर्मा 'कृष्ण' (शाहजहाँपुर)
१५– प्रसिद्ध नारायण गौड़ (सीतापुर)
१६– बलदेवप्रसाद मिश्र 'राजहंस' (अयोध्या)
१७– अवधेश मालवीय (कानपुर)
१८– अखिलेश त्रिवेदी (सीतापुर)
१९– रामजी दास 'कपूर' (सीतापुर)
२०– अम्बिकेश (कानपुर)
२१– कुमदेश बाजपेयी (कानपुर)
२२– सुमन दूबे (कानपुर)
२३– विशम्भरदयाल शुक्ल 'ललाम' (कानपुर)
२४– अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' (हरदोई)
२५ प्रतीक मिश्र कानपुर
२६ सिद्धनाथ मिश्र कानपुर)

परिशिष्ट–२

(क) आधार काव्य रचनाएँ

१– गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : राष्ट्रीय-मन्त्र, रमाशंकर अवस्थी, लाठी मोहाल, कानपुर, प्र०सं० जनवरी १९२१ई.
,, ,, : कृषक-क्रन्दन, शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर, तृतीय सं० १९२३ई०
,, ,, : करुणा-कादम्बिनी, भारती प्रतिष्ठान कानपुर, १९५८ वि०
,, ,, : त्रिशूल-तरंग, शिवनारायण मिश्र, प्रताप पुस्तकालय कानपुर, तृतीय सं. सं. २०००
२–जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी': वैकाली, शारदा सेवक सदन, लखनऊ
३– अनूप शर्मा : सिद्धार्थ, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, प्र० सं० १९३७ ई०
,, ,, : सुमनाञ्जलि, ,, ,, १९३९ ई०
,, ,, : शर्वाणी, पारिजात प्रकाशन, चाँदनी चौक दिल्ली, प्र० सं० १९४८ ई०
,, ,, : फेरि-मिलिबो, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, सं० १९६६ ई०
,, ,, : अग्नि-पथ, हिन्दुस्तानी बुक डिपो, लखनऊ
४–हृदयनारायणपाण्डेय 'हृदयेश': कसक, द आइडियल लिटरेरी पब्लिशिंग
,, ,, हाऊस कानपुर, प्र० सं० सं० १९८१
,, ,, : करुणा, हृदय मन्दिर, पब्लिशिंग हाउस, कानपुर, प्र० सं० १९९५ वि०
,, ,, : मधुरिमा ,, ,,
,, ,, : प्रेम-सन्देश ,, ,,
,, ,, : मनोव्यथा, रघुनन्दन प्रेस, चावल मण्डी कानपर १९२४ ई०
सकीतन सिटी प्रस कानपुर १९२४ई०

१०– शिशुपाल सिंह 'शिशु' : प्र० सं० १९३७ ई०
,, ,, : छोड़ो-हिन्दुस्तान, मारवाड़ी नवयुवक मण्डल, मारवाड़ी बाजार, हैदराबाद, प्र० सं० १९४६ ई०
११– द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' : सती-सारन्धा, शिवनारायण मिश्र वैद्य प्रताप पुस्तकालय, कानपुर, प्र० सं० १९२४ ई०
,, ,, : बाल-विभूति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० २००१ ई०
,, ,, : मनहरवीर-ज्योति, रसिकेन्द्र पुस्तकालय कालपी, द्वितीय सं० सं० १९९५ ई.
,, ,, : हरि-जन्म, पं० जगदेव पाण्डेय, मुंगेर, १९८६ वि०
१२– डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' : शान्ति-दूत आलोक मिश्र, वार्डेन निवास, श्रीजयनारायण डिग्री कालेज लखनऊ, प्र० सं० १९७० ई०
,, ,, : प्रेम-पीयूष, ,, ,, प्र० सं० १९७१ ई०
,, ,, : क्रान्ति दूत राना, ,, ,, प्र० सं० १९७२ ई०
,, ,, : जय-भरत, ,, ,, द्वितीय सं० १९७६ ई०
,, ,, : साधना के स्वर, ,, ,, प्र० सं० १९७६ ई०
,, ,, : अनुपमा ,, ,, ,, प्र० सं० अक्टूबर १९७७ ई०

(ख) सहायक-ग्रन्थ

I हिन्दी

१– डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्व-विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० १९७५ वि०
२– अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी : समाचार पत्रों का इतिहास ज्ञान मण्डल लिमिटेड प्र० स० २०१० वि०

३– आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-दो, चन्द्रभूषण मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल वाराणसी प्र० सं० सं० २०१७

४– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, प्रथम-भाग, इण्डियन प्रेस प्रयाग, १९४९ ई० एवं १९७६ ई०

५– डॉ० आशा गुप्ता : खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६१ ई०

६– डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आधुनिक कविता का मूल्यांकन, हिन्दी भवन जालन्धर और इलाहाबाद, १९६२ ई०

७– काव्य-कलश : हिन्दी साहित्य मण्डल, कानपुर, सं० २०३१ ई.

८– कृष्णदत्त वाजपेयी : ब्रज का इतिहास, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मण्डल मथुरा, सं० २०१५ ई.

९– डॉ० कृष्ण भावुक : आधुनिक हिन्दी कवियों के शब्द प्रयोग, हिन्द भूमि, प्रिंटिंग प्रेस, मलका चौक, जालन्धर शहर, १९६८ ई०

१०– डॉ० कृष्णलाल शर्मा : आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि, ग्रन्थम् रामबाग कानपुर, १९७४ ई०

११– डॉ० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह : शोध-साधना, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७३ वि०

१२– डॉ० केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९७१ ई०

१३– डॉ० केशरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा, सरस्वती मन्दिर बनारस, २००४ वि०

,, ,, : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, सरस्वती मन्दिर काशी सं० २००४ वि०

१४– डॉ० किरणकुमारी गुप्ता : हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, २०१४

१५– डॉ० कैलाश बाजपेयी : आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६३ ई०

१६– डॉ० गंगासागर राय : हिन्दी काव्य मीमांसा, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी १ प्र० सं० सं० २०२१

१७– डा० गणपतिचन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास भारतेन्दु

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त : भवन, चण्डीगढ़—२ प्र० सं० १९६५ ई०
१८— डॉ० गणेशदत्त सारस्वत: हिन्दी कविता, कल और आज, ग्रन्थम रामबाग कानपुर, प्र० सं० १९८० ई०
१९— गणेशप्रसाद शर्मा : फर्रुखाबाद का इतिहास, मन्त्री आर्य समाज, फर्रुखाबाद
२०— जगदीश बाजपेयी : आधुनिक ब्रजभाषा काव्य, अजन्ता प्रकाशन मुजफ्फरनगर, प्र० सं० १८६४ ई.
२१— डॉ० जगदीशनारायण त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर १९६२ ई०
२२— डॉ० जितराम पाठक : आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का विकास, राजीव प्रकाशन, आलोपी बाग, इलाहाबाद, प्र० सं० १९७६ ई०
२३— द्वारिकाप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य के विविध वाद, साहित्य निकेतन, कानपुर, प्र० सं० १९७० ई०
२४— धीरेन्द्र वर्मा, सपा० : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-दो, वाराणसी, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, प्र० सं० २०२० ई.
२५— डॉ० नगेन्द्र : भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, भाग-दो, ओरियन्टल बुक डिपो, दिल्ली, १९५५ वि०
,, ,, : रीतिकाव्य की भूमिका, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४९ ई०
,, ,, : विचार और विश्लेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं० १९५५ ई०
,, ,, : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-दस, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २०२८ ई.
,, ,, : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल, पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली, प्र०सं० १९७३ और १९८० ई०
२६— नरेशचन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर, कानपुर इतिहास समिति पटकापुर कानपुर, १९५७ ई०
२७— डॉ० नरेश : आधुनिक हिन्दी कविता में उर्दू के तत्व, राज्यपाल एन्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र० सं० १९७३ ई०

२८– डॉ० नरेन्द्रमोहन : आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं० १९७२ ई०

२९– डॉ० नित्यानन्द शर्मा : आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रतीक विधान, साहित्य सदन देहरादून

३०– डॉ० निर्मला जैन : आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६३ ई०

३१– डॉ० परशुराम शुक्ल 'विरही' : आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद ग्रन्थम् रामबाग कानपुर, १९६६ ई०

" " : आधुनिक हिन्दी कवियो का जीवन दर्शन, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर–१२, १९७२ ई०

३२– परशुराम चतुर्वेदी : हिन्दी काव्यधारा में प्रेम प्रवाह, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५२ ई०

३३– प्रेमनारायण टन्डन सपा० : अनूप शर्मा, अभिनन्दनांक (रसवन्ती), विद्यामन्दिर, रानी कटरा, लखनऊ, १९२१ई०

" " : आधुनिक हिन्दी कवियो की काव्य कला, हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ, १९६१ ई०

३४– डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०१४ ई.

३५– प्रभातशास्त्री संपा० . सचयन. प्र० सं०

३६– पं० नारायण चतुर्वेदी : आधुनिक हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी इलाहाबाद, १९५३ ई०

३७– ब्रह्मानन्द दीक्षित, संपा० : वचनेश अभिनन्दन ग्रन्थ, पांचाल साहित्य परिषद् फर्रुखाबाद, प्र० सं० १९५५ ई०

३८– ब्रजकिशोर चतुर्वेदी : आधुनिक कविता की भाषा, गयाप्रसाद एण्ड सन्स गया कुंज आगरा, स० २००८ ई.

३९– महेन्द्रप्रताप सिंह : भगवन्तराय खीची और उनके मण्डल के कवि, दिल्ली रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, १९६७ ई.

४०– डॉ० भागीरथ मिश्र : हिन्दी रीति साहित्य, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई, प्र० सं० १९५६ ई०

४१ डॉ० मोहन अवस्थी : आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प हिन्दी परिषद प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रयाग १९६२ ई०

४१– डॉ० मधुरमालती सिंह : आधुनिक हिन्दी काव्य में विरह भावना, आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली-६, १६६३ ई०
४३– डॉ० रमन नागपाल : आधुनिक हिन्दी काव्य में पलायनवाद, विभु प्रकाशन साहिबाबाद, प्र० सं० १६७७ ई०
४४– रामचन्द्र वर्मा, संपा० : मानक हिन्दी कोश, चौथा-खण्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र०सं० १६६५ ई०
४५– डॉ० रामसकल राय शर्मा : द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्यनगर, कानपुर १६६६ ई०
४६– डॉ० रामकुमार सिंह : आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर, १६६५ ई०
४७– डॉ० रामरतन सिंह 'भ्रमर' : आधुनिक हिन्दी काव्य में चित्र विधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र० सं० १६६५ ई०
४८– डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली सं० २०१५ई.
४६– डॉ० राजबधवा : आधुनिक हिन्दी काव्य और नैतिक चेतना फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड कम्पनी दिल्ली–६, १९६६ई०
५०– राजेन्द्रसिंह गौड एम० ए० : आधुनिक कवियों की काव्य साधना, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी माई थान आगरा, द्वितीय सं० १६४६ ई०
५१– डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, पद्मजा प्रकाशन कानपुर, प्र० सं० २०११ ई.
५२– रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० १६६६ वि०
५३– लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी : कानपुर के कवि, भीष्म एण्ड ब्रदर्स पटकापुर कानपुर, १६४६ ई०
५४– डॉ० वेदप्रताप वैदिक : हिन्दी पत्रकारिता, विविध आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, १६७६ ई०
५५– डॉ० वीरेन्द्र सिंह : हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, हिन्दी परिषद् प्रकाशन विश्वविद्यालय प्रयाग, १६६४ ई.
५६– श्यामसुन्दर दास, संपा० : हिन्दी शब्द सागर, खण्ड-सात, नागरी प्रचारिणी सभा काशी १६७० ई०
५७ डा० श्याम तिवारी भारतेन्दु-मण्डल के सात लेखक अप्रकाशित

शोध-प्रबन्ध, १९६६ ई० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

५८– डॉ० शैलकुमारी : आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी इलाहाबाद, १९५१ ई०

५९– डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त : हिन्दी काव्य के आलोक स्तम्भ, अशोक प्रकाशन, नयी सड़क दिल्ली–६, प्र० सं० १९६८ ई०

६०– डॉ० शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, प्र० सं० २०३३

६१– डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र : कवि शिक्षा की परम्परा और हिन्दी रीति साहित्य, चित्रलेखा प्रकाशन १४७, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद–६, प्र० सं० १९८१ ई०

६२– प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, आत्माराम एण्ड सन्स काशमीरी गेट दिल्ली, प्र० सं० सं० १९५०

६३– सुधाकर पाण्डेय संपा०: हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, नवम्-भाग, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सं० २०३४

६४– सत्यव्रत शर्मा अजेय : जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राज्य श्री प्रकाशन मथुरा, १९७८ई०

६५– सेवक वात्स्यायन, संपा० : मूर्धन्या, अमरेश वैद्य, अनुरंजिका हटिया, कानपुर, सं० २०२४

६६– डॉ० सावित्री सिनहा : ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

६७– डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर लिमिटेड बम्बई–४, सातवाँ सं० १९६३ ई०

" " : प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, सितम्बर १९५२ई०

" " : मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पब्लिकेशन ब्यूरो पंजाब यूनीवर्सिटी–चंडीगढ़, प्र० सं० मार्च १९७० ई०

" " : मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन लिमिटेड द्वितीय स० १९५६ ई०

६८– डॉ० हरदयाल : आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, १९७८ ई०

६९– डॉ० हुकुमचन्द : आधुनिक हिन्दी काव्य में नवीन जीवन मूल्य, भारतीय संस्कृत भवन, जालन्धर, प्र० सं० १९७० ई०

७०– श्री छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' : आचार्य सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ, श्री छैलबिहारी मिश्र सचिव नगर महापालिका कानपुर, २१ अगस्त १९६४ ई०

७१– श्री हरि दामोदर : आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, भारत बुक डिपो भागलपुर

II संस्कृत

१– दण्डी : काव्यादर्श, ओरियन्टल बुक सप्लाइंग एजेन्सी पूना, सन् १९२४ ई.

२– भामह : काव्यालंकार, चौखम्भा संस्कृत सिरीज बनारस सन् १९२८ ई.

३– मम्मट : काव्य-प्रकाश, चौखम्भा विद्याभवन बनारस, १९५२ ई०

४– रुद्रट : काव्यालंकार, बासुदेव प्रकाशन माडल हाउस, दिल्ली ९ प्र० सं० १९६५

५– रूपगोस्वामी : श्री हरिभक्तिरसामृत सिन्धु, विद्या विलास प्रेस काशी, प्र० सं० सं० १९८८

६– विश्वनाथ : साहित्य-दर्पण, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, सं. २०१४

III अंग्रेजी–

1. Webster's–New International Dictionary, Volume 1, 2,
2. New Standard Dictionary of the English Language Volume.
3. Monier williams–Sanskrit English Dictionary Oxford At clavendon Press–1899.
4. J. Dryden–Dramatic Poesy and other Eassays–1950, J. M. Dent and Sans Ltd. London.
5. Dr. V. Raghavan–The Number of Rasas–The Adyar Library Adyar

6: Dr. Indra Nath Madan–Modern Hindi Litrature Ture Lohor Minirva. Book shop Publisher First 1931.

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ

१– अम्बिकाप्रसाद गुप्त, संपा० : इन्दु, इन्दु कार्यालय बनारस, जनवरी १९१५, दिसम्बर १९१३, जुलाई १९१५

२– कालिकाप्रसाद दीक्षित, संपा० : वीणा, मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर, सं० १९५८ वि०

३– कृष्णकान्त मालवीय, संपा० : मर्यादा, अभ्युदय प्रेस प्रयाग,

४– कालूराम गंगराडे, संपा० : प्रभा, प्रभा आफिस खण्डवा (मध्य-प्रदेश) ज्येष्ठ १९७० वि० से फाल्गुन १९७२ वि०

५– गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' संपा० : सुकवि, सुकवि कार्यालय कानपुर

६– नरेन्द्र मोहन, संपा० : दैनिक-जागरण, कानपुर रजत जयन्ती अंक, १९७५ ई०, सर्वोदय नगर कानपुर-५

७– डॉ० लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', संपा० : सुकवि-विनोद, सुकवि साहित्य परिषद् लखनऊ